प्रकाशक,
उदयलाल काशलीवाल,
गांधी हिन्दी-पुस्तक भंडार,
कालबादेवी—बम्बई ।

मुद्रक,
एम. एन. कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ४३४ ठाकुरद्वार बम्बई

प्रस्तावना ।

एलन साहब आध्यात्मिक विषयके बड़े प्रसिद्ध लेखक समझे जाते हैं। योरुपमे आपकी पुस्तकोंका बड़ा आदर है। यही कारण है कि थोड़े ही समयमे आपकी कई पुस्तकोंके तीन तीन सस्करण निकल चुके हैं। यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होती है कि हि हिन्दी-संसारका भी आपकी पुस्तकोंकी उपयोगिता पर ध्यान गया है। और कई पुस्तकोंके अनुवाद हो भी चुके हैं।

यद्यपि हमारे यहॉ आध्यात्मिक विषयके ग्रन्थोकी कमी नहीं, परन्तु वे बड़े गहन हैं, उनकी विचार-शैली बडी सूक्ष्म और साथ ही कठिन भी है। इस कारण आजकलकी परिस्थितिको देख कर यह आशा करना व्यर्थ है कि उनके द्वारा पाठक्गण चाहिए जैसा लाभ उठास सकेंगे। अत एव आवश्यकता है कि एलन साहबकी सरल पद्धति पर लिखी हुई आध्यात्मिक पुस्तकोंका हिन्दी रूपान्तर किया जाकर उसके द्वारा मनुष्यके नैतिक जीवन पर प्रकाश डाला जाय। आध्यात्मिक विषयको कठिन और नीरस होने पर भी एलन साहबकी सुन्दर हतौटीने उसे बहुत ही सरल, सरस और चित्ताकर्षक बना दिया है। और इस कारण विश्वास है कि जो लोग शरीर-निग्रह—सयम—के महत्त्वको न समझ कर उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं या जिनका लक्ष्यबिन्दू 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' बन रहा है वे भी आपकी पुस्तकोंको पढ़ कर इच्छाओंकी गुलामीको सन्देह भरी दृष्टिसे देखने लगेंगे।

आपकी 'लाइट ऑन लाइव्ज डिफिकल्टीज 'नामक पुस्तकका जो यह अनुवाद पाठकोंकी भेट किया जाता है वह इसी आशासे कि आध्यात्मिक जीवनके महत्त्वको समझ कर पाठक अपने जीवनको उसी सॉचेमे ढालनेका यत्न करें। हमें विश्वास है कि इस प्रयत्न द्वारा वे अवश्य अनन्त प्रकाशमय जीवन लाभ-कर सकेंगे।

अनुवादके सम्बन्धमें मुझे यह कहना है कि मेरा यह अनुवाद इस लिए अनुवाद है कि विपयका विभाग और अध्यायोंकी शैली मैंने मूल पुस्तकके आधार पर ही रक्खी है। इसी प्रकार प्रत्येक अध्यायके केन्द्र विचारोंको भी मैंने मूल पुस्तकसे लिया है। परतु इसके अतिरिक्त विचारोंको परिवर्धित करने, विपयको घटाने-बढ़ाने और क्लिष्ट विचारोंको छोड़ देनेमें मैंने पूर्ण स्वाधीनतासे काम लिया है। पुस्तकको भारतीयताके सॉचेमे ढालनेका भी पूर्ण प्रयत्न किया गया है। यह सब इसी अभिप्रायसे कि पाठक इसे पढ कर लाभ उठा सके।

अनुवादक।

अनुक्रमणिका ।

विषय ।	पृष्ठ ।
१ प्रतिज्ञा-पालन	१
२ सदसद्विचार	५
३ आत्म-शक्तियाँ	१४
४ श्रुतियोंकी मादकता	१८
५ शान्त-जीवनकी प्राप्ति	२२
६ कार्य और उनके फल	२६
७ आत्म-त्याग	३०
८ मनोविकारों पर शासन	३४
९ मनोविकारों पर शासन (२)	३८
१० कर्त्तव्य-मार्ग	४२
११ परिश्रमका महत्त्व	४७
१२ व्यक्तिगत स्वतंत्रता	५१
१३ स्वभाव	५६
१४ विवेक	६२
१५ जीवनके दुःख	६८
१६ साम्प्रदायिक कलह	७४
१७ अनन्त प्रकाश	७८

जीवनके महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों पर

प्रकाश ।

प्रतिज्ञा-पालन ।

दशरथ, हरिश्चन्द्र, कर्ण, प्रताप, गोविंद इत्यादि महापुरुषोंके नामका स्मरण करते ही हमारे चित्तमे एक प्रकारका विचित्र ही भाव उदित होता है । इस भावका सहसा वर्णन करना कठिन है । कथाओके आधार महात्माओके प्रति भक्तिका सचार होनेके साथ ही साथ हृद-यमे एक विशेष प्रकारका आनंद और आत्मामे एकाएक शक्तिकी सन-सनाहट, ये तीनों भाव इस प्रकार मिले रहते हैं कि उनको एक दूस-रेसे अलग करना असंभव है । इन दृढ़-प्रतिज्ञ महात्माओंके इतिहासको सुनते ही मृत-हृदय मनुष्योका चित्त भी एक वार चैतन्य हो जाता है । मानसिक विचार जिस समय उत्तेजित होकर मनुष्यके विवेकको दवा लेते है और उसे पाप-कार्योंमें प्रेरित करने लगते है उस समय इन महात्माओंकी जीवनी मंत्रका सा असर वताती है । नैतिक चरित्रको उन्नत वनानेमें इस प्रकारके जीवन-चरित्र वहुत कुछ सहायता देते है । यह ठीक भी है; क्योकि यदि स्वार्थ-त्याग, पितृ-भक्ति, देश-भक्ति, व्रत-रक्षा इत्यादि पुण्य-कार्योंके आदर्श मनुष्यके सम्मुख रक्खे जायँ तो उसके चरित्र पर उनका असर निःसंदेह पड़ेगा । पुराणोकी सृष्टि और कथाओके वॉचे जानेका अभिप्राय यही है ।

महात्माओंके जीवन-चरित्रोंका ज्यो ज्यों हम ध्यानसे मनन करते हैं, अपनी कल्पना-शक्तिके द्वारा ज्यो ज्यो हम उनकी परिस्थितिका अदाज बॉधते है त्यो त्यों हमे पता लगता है कि उनकी आत्मामे कितना बल था । चाहे इतिहास हो अथवा पुराण, जब तक इस बातको चित्रित न कर लिया जाय कि उस समयकी अवस्था-विशेष क्या थी, मनुष्योके भाव कैसे थे और समय क्या था तब तक न तो वह विषय हमारे चित्तको आकर्षित कर सकता है और न उससे हमें कुछ लाभ ही हो सकता है । महाभारत और रामायण सरीखे अद्वितीय ग्रंथोका घर घर पाठ होते रहने पर भी यदि हमारा चरित्र रचमात्र भी उन्नत नहीं होता तो कहना चाहिए कि उक्त ग्रथोका पाठ सुनते समय हम अपने हृदयकी ऑंखोको बिल्कुल बद रखते है ।

स्वार्थ-त्यागकी कथाको सुन कर हमारे हृदयमें भक्तिका सचार क्यों होता है ? दृढ-प्रतिज्ञ राजा दशरथकी कथाको रामायण द्वारा अमर कर देनेमें तुलसीदासजीका अभिप्राय क्या था ? इन्हीं दो प्रश्नोको हम दूसरे रूपमें इस प्रकार भी पूछ सकते है—स्कूलोमे इतिहासकी शिक्षा देनेका अभिप्राय क्या हो सकता है ?

राजा दशरथकी कथाको प्रायः सभी मनुष्य जानते है। रामचंद्रजीका वन-गमन, राजाका प्राण-त्याग और बादमें आनेवाली सारी कथा रामायणके पाठकोको भली भाँति मालूम है । इन महाशयोंके प्रति हमारा यह प्रश्न है कि क्या कभी राजा दशरथके प्रतिज्ञा-पालन पर भी किसीने भली भाँति विचार किया है ? उत्तरमे इने गिनोको छोड़ कर प्रायः सभी लोगोको ऊपरका प्रश्न अनूठा सा विदित होगा।

कुछ समयके लिए बूढे राजाकी परिस्थितिका विचार कीजिए। एक तो बुढापेके कारण थका हुआ उनका वह शरीर, दूसरे रामचन्द्र सरीखे

सर्वगुण-सम्पन्न और प्राणोसे प्यारे पुत्रका वन-गमन और तीसरे बहुत समय पहले रानीको दिया हुआ तुच्छ वर; और यह सब उस समय उपस्थित जब कि राजा अपने जीवनकी सबसे प्यारी इच्छाको पूरी कर रहा था ! राजाको यह भली भाँति विदित था कि रामचन्द्रजीके वन-गमन करते ही मेरे प्राण-पंखेरू अवश्य उड़ जायँगे, प्रजामे क्लेश और असतोप फैल जायगा और सारा परिवार दुःखका आगार बन जावेगा। एक निरपराध व्यक्तिको डाकुओ और हत्यारोकी सजा अर्थात् देश निकाला देना—बतलाइए कैसा घोर अन्याय था ! और इसे एक नीति-शास्त्रका वेत्ता वयोवृद्ध अनुभवी राजा जान-बूझ कर कर रहा है ! पाठक, कैसा अनूठा दृश्य है !

तो क्या दशरथ स्त्री-भक्त और कर्तव्य-विमूढ़ हो गये थे ? क्या बुढापेके कारण उनको अपने हिताहितकी सुध न रही थी ? अथवा एक छोटीसी बातके लिए—जो आसानीसे छिपाई जा सकती थी—इतना गोलमाल करनेको तत्पर हो जाना, उनका दुराग्रह था ? स्त्रीके लिए पुत्रको त्याग कर देना संभव हो सकता है; परतु उसकी इच्छाको सतुष्ट करनेके लिए अपने प्राणो तककी आहुति दे देना—राजा दशरथ स्त्रीके इतने भक्त हो गये हो—यह बात माननेके लिए मन तैयार नहीं होता। राजाके उस समयके विचार और कृत्योंसे यह भी स्पष्ट है कि राजाको कर्तव्य-पथका पूर्ण-रूपसे ज्ञान था। फिर क्या यह हठ ही कहा जाय ?

प्रतिज्ञा-पालन और हठमे क्या अंतर है ? यदि एक दृष्टिसे देखा जाय तो कुछ भी नहीं। हठी मनुष्यने मनमें जो धारणा कर ली है उसकी पूर्तिके लिए आपके लाख समझाने बुझाने पर भी वह बराबर प्रयत्न करता रहता है। इसी भाँति दृढ-प्रतिज्ञ मनुष्य भी अपने प्रणको पूरा करनेकी प्राणपणसे चेष्टा करता है। परंतु स्मरण रहे कि हठी

मनुष्यका हठ विना नींवका मदिर है । उसके पास सिद्धान्तोंका आधार नही है । इसी लिए वहुधा उसके कार्य कभी इस तरफ और कभी उस तरफ होते हैं । विना जुते हुए जंगली घोड़ेकी नाईं उसकी सनक जिधर चाहे उसी ओर दौड़ पड़ती है । इसके विरुद्ध दृढ-प्रतिज्ञ मनुष्यका चरित्र वद्ध है और उसके कार्य सिद्धान्तों पर दृढतासे जमे रहते है । उसके विचार और कार्योंका केन्द्र एक निश्चित लक्ष्य है । उसीकी पूर्तिके लिए वह निरंतर प्रयास करता रहता है ।

दशरथका प्रण-पालन स्वार्थ-सिद्धिके निमित्त न था । इसके विपरीत उन्हें इसका पालन करनेमें अपने प्राणों तकसे हाथ धोने पडे थे। फिर इसे हम हठ किस प्रकार कह सकते है ? जैसा स्वार्थ-त्याग और जैसी चेष्टा उन्होंने की उससे स्पष्ट विदित होता है कि प्रतिज्ञा-पालन उनके जीवनका लक्ष्य था । निदान उस लक्ष्यके पूरा करनेमें—संसारके सर्वमान्य सुखो तकसे मुख मोडनेमें—उस वीर आत्माको जरा भी संकोच न हुआ । उस वेदनाको, जो कि अपने वचनोंको पूरा न कर सकने पर होती, सहनेके लिए राजा असमर्थ थे । धन्य राजा दशरथ ! धन्य तुम्हारा साहस और धन्य तुम्हारी कर्तव्य-परायणता !!

अपने वचनका निर्वाह करना कई अशोंमे अपने लक्ष्यको पूरा करनेका प्रयत्न ही है । तव प्रश्न यह है कि यदि एक वार हम अपने प्रणको न निवाहे तो क्या हानि है ? इसकी पूर्ति क्या अन्यत्र नहीं की जा सकती ? इसका उत्तर वही है जो एक कसरतका अभ्यास करनेवाला लड़का आपको दे सकेगा। एक दिन व्यायाम न करना तो अधिक हानिकारक नही, परतु दूसरे दिन उसका चित्त पर जो असर पडता है वह सचमुच भयकर है। अरुचि, वल और उत्साहकी कमी पूरी होना कठिन है। वस ऐसा ही प्रत्येक नैतिक आदतके विपयमे समझो ।

आजके प्रण-भगसे आत्मामे जो दुर्बलता उत्पन्न हो जायगी वह न जाने कौन भयकर परिणाम उत्पन्न करे। यही दुर्बलता बढते बढ़ते मनुष्योंको नीच और पापी तक बना सकती है। पापकी नदीका वेग बहुत ही शीघ्र बढता है। प्रण-भगकी बात तो क्या, उसका विचार भी हृदयमे लाना कायरता है।

सिद्धांतोंको विचार-पूर्वक स्थिर करके उनकी रक्षा करते हुए अपने लक्ष्यको पूरा करनेका प्रयत्न जारी रखना यही उत्तम मनुष्योंका लक्षण है। इस कार्यकी सफलताके लिए जब तक हम अपने दैनिक कार्योंका यथोचित विभाग न करें और प्रति दिनकी छोटी छोटी बातोंको यथायोग्य नियत समय पर पूरा करनेकी आदत न डाले तब तक दृढ-प्रतिज्ञ बनना असभव है। बीसों वर्ष स्कूल और कालिजोंकी शिक्षाका अभिप्राय मनुष्यको दृढ-प्रतिज्ञ बनानेका है। बड़े बडे महात्माओके उपदेशोंका सार भी यही है। धर्मग्रथ भी चिल्ला चिल्ला कर यही कहते है कि मनुष्यको चाहिए कि वह अपने कर्तव्यसे च्युत न हो। जो विचार हृदयमे स्थिर कर लिया है उसकी पूर्तिके लिए विघ्न-बाधाओकी परवा न करके प्रयत्न करते रहनेमें मनुष्यको चिउंटीसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

सदसद्विचार।
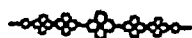
एक समय वह था जब कि मनुष्योंको अपने स्वतंत्र विचारोके कारण नाना प्रकारका कष्ट उठाना पड़ता था। प्रचलित प्रथा और रूढियोंके विरुद्ध बोलनेकी तो बात ही क्या, उनके विपयमें निरपेक्ष विचार करनेको भी लोग पाप समझते थे। निष्पक्ष आलोचनाके प्रय-

त्नको बल-पूर्वक दबाये रखनेसे मनुष्यका विचार-क्षेत्र अवश्य ही संकुचित रहता था। परंतु आज वह बात नहीं है। विचार-स्वातंत्र्य आजकल प्रत्येक व्यक्तिकी प्रकृति-दत्त सम्पत्ति समझी जाती है। रूढिका शासन आज भी विस्तृत है; परतु उसकी सत्ता बहुत निर्बल हो गई है। छोटे छोटे बालक भी उसके शासन-दडको अन्याय-पूर्ण समझते है। जिधर देखो उसी ओर स्वतंत्रता, अधिकार और प्राकृतिक स्वत्वोंकी पुकार मच रही है। पदार्थ-विज्ञानके नियमानुकूल जितना ऊपरी दवाव था, उतने ही जोरसे जन-साधारणका चित्त क्षोभित और अधिकारके विरुद्ध उछल रहा है।

मुद्रण-कलाकी उन्नतिने सभ्यताके क्षेत्रमे एक नया ही विप्लव खड़ा कर दिया है। प्रति वर्ष पुस्तकोंकी विराट् सेना छापेखानोसे जन्म ले ले कर मनुष्यो पर आक्रमण करनेके लिए तैयार होती है। जिसके मनमे जो आया इधर उधरके मनगढ़ंत प्रमाणोकी साक्षी देकर उसने अपने विचारोको एकत्र कर एक पुस्तक छपा दी। बस, लेखकोंकी पक्तिमे गिने जाना यही मनुष्योंके जीवनका एक मात्र लक्ष्य हो रहा है। साहित्यका शरीर निम्न श्रेणीके अभागे लेखकोंकी कृतियो द्वारा ऐसा बे-डौल हो गया है कि उसे सुसंस्कृत बनानेके लिए बहुत कुछ समय और श्रमकी आवश्यकता है। इतना ही क्यो, उत्तम और खराब पुस्तकोंकी पहचान करनेके लिए भी एक दो नही बीसो पुस्तके लिखी जा चुकी है।

यह तो हुई पुस्तकोंकी बात; अब थोड़ासा व्याख्याताओकी ओर भी देखिए। जन-साधारणके समक्ष व्याख्यान देनेकी कला बहुत पुराने समयकी है। परंतु गत सौ सालोमे इस कलाने जो असाधारण उन्नति पाई है उतनी पिछले दो हजार वर्षोंमे भी नही पाई थी। पिष्ट-

पेपण, बातोको बढाना, झूठी साक्षियाँ देना इत्यादि करामाते उत्तम व्याख्याताओके भूपण माने जाते है। बड़े बड़े जटिल प्रश्नोको हल कर डालना, गंभीर प्रश्नोका एक मात्र कारण ढूँढ निकालना और सच्चे सुखका एक मात्र उपाय बता देना यह तो लेक्चररोकी बाईं चुटकीका खेल है!

विचार करने और बोलनेकी स्वतंत्रताके द्वारा सभ्यताने उन्नति अवश्य की है; परंतु इसके द्वारा मनुष्यका अहित भी बहुत कुछ हुआ है। इस समय जिधर देखिए उसी तरफ महात्मा, ऋपि, पीर और पैगम्बर नजर आते है! घर बैठे त्रिकालकी बातोंको जान लेना, केवल पानीके सहारे सब रोग-समूहको नष्ट कर देना और कई समाज-सुधारोके द्वारा इस मर्त्यलोक पर स्वर्गके सुखोको उतार लेनेकी सामर्थ्य प्राप्त कर सकना यह सब वर्तमान युगकी विचित्र और झूठी लीलाये है।

यदि सच पूछो तो सिद्धातोके इस भयानक जगलमें साधारण मनुष्यकी बुद्धि अनायास ही विचलित हो जाती है। औरकी तो बात ही क्या, बड़े बड़े वैज्ञानिकोकी बुद्धि भी इस प्रकारका निर्णय करनेमे असमर्थ हो जाती है। किसके सिद्धातको सत्य मानें और किसको असत्य, इसीका निर्णय नही होने पाता, कार्य करनेकी वात तो दूर है।

सिद्धान्तोके बहु सख्याक होनेसे उतनी हानि नहीं होती, जितनी कि उनके आपसी विरोधसे होती है। दार्शनिक और वैज्ञानिक यदि आपसमे लड़ते तो अधिक चिन्ता न थी; परंतु उन्होने जो अपने सारे वितंडा-वादको शास्त्रो द्वारा अपने अपने सिद्धातोसे एक-जी कर दिया है, फलतः जो लोग उन सिद्धातोका मनन करते है वे शात-चित्त होनेके पलटे उद्धत-स्वभाव और कलह-प्रिय हो जाते है। उनसे फिर आपसी गाली-गलौज और एबजोहीके सिवाय कुछ नहीं बन पड़ता।

साहित्य, पुराण और धर्मशास्त्रोके अध्ययनका एक मात्र अभिप्राय मनुष्यके चरित्रको उन्नत बनाना है । शातिका अनुभव कराना, इच्छाओकी ज्वालासे परितप्त हुए जीवोको सुखी बनाना और उन्हें ऐसे उपायोका अवलम्बन करनेके लिए उत्साहित करना जिनके द्वारा उनको इस लोकमे धन, यश और शान्ति तथा परलोकमे सुख मिले, इन्हीं अभिप्रायोकी पूर्तिके लिए प्राचीन ऋषियोने इनका निर्माण किया है ।

आत्मा, परमात्मा, इह लोक और परलोक-सम्बंधी प्रश्नोको हल करनेका वास्तविक साधन दर्शन-शास्त्रोका पांडित्य नहीं है । इनमे उलझ कर मनुष्य जीवन भर अपने सिरको खुजलाता हुआ संभव है कि उपर्युक्त गूढ प्रश्नोके रहस्यको तनिक भी न समझ सके । इस मार्गका सच्चा पथ-प्रदर्शक तो स्वयंका किया हुआ अनुभव है । तत्त्ववेत्ता जिस सिद्धान्तको सिद्ध कर रहा है उसके अध अनुगामी मत बनो । उस महर्षिने बड़े बड़े ग्रन्थोका निर्माण किया है, उसकी कीर्तिका यशोगान चारो ओर हो रहा है, इस लिए उसके सिद्धान्तोंको मान ही लेना होगा, यही तो बुद्धिका दासत्व और गोरखधधेकी उलझन है । अपने विचार द्वारा अनुभव करने पर आध्यात्मिक प्रश्न जितनी जल्दी हल हो सकते है उतने और प्रकार नहीं हो सकते । एक कविने सच कहा है, ' सच पूछो तो अपनी बुद्धि द्वारा यदि एक भी प्रश्न हल कर लिया जाय तो बाकी सब बाते धीरे धीरे स्वयं हल होती जायॅगी । ' जीवनका यह प्रश्न-समूह उस तालेके समान है जिसका पहला पर्दा खुल जाने पर बाकी सब धीरे धीरे स्वयमेव खुलते जाते है । शिक्षक द्वारा समझाये हुए पूरे ग्रथका पाठ करने पर भी बुद्धि उतनी प्रौढ नहीं होती, जितनी स्वतः द्वारा समझे हुए चार पत्रो द्वारा होती है । जीवन-मरणके विकट प्रश्नोके सम्बंधमे वागडम्बर-

की शरण लेना तो मानो मूर्खता ही है। वास्तविक सिद्धातोको समझानेके लिए न्याय और दर्शन-शास्त्रोकी लम्बी लम्बी, शृंखला-वद्ध, तर्क-पूर्ण सूत्र-श्रेणीकी जरा भी आवश्यकता नहीं। सूरदास और तुलसीके पद्यो द्वारा इस विपयका जैसा ज्ञान प्राप्त हो सकता है उतनी सरलतासे गीताके भाष्यो द्वारा कभी नही हो सकता। संसारके सभी वड़े वड़े महात्माओने इन प्रश्नोको हल करनेके लिए सरल और थोड़े शव्दोका उपयोग करना ही उचित समझा है।

आत्माके भविष्यसे सम्वन्ध रखनेवाले ये प्रश्न सदैव हमारी आँखोके सामने उपस्थित रहते है। इतना ही नहीं, इन प्रश्नोके समाधान और हल करनेके साधन भी हमारे सामने प्रस्तुत है। इतना होने पर भी प्रति शत ९५ मनुष्योको तो ये प्रश्न सूझ ही नहीं पड़ते। उन्हे यह बोध ही नहीं होता कि इन विपयोका ज्ञान उपयोगी है अथवा नही। बाकीके मनुष्य लाखो प्रयत्न करने पर भी उन्हे हल नहीं कर सकते। इसका कारण यही है कि मनुष्योके हृदयमें अहंकारकी मात्रा सदैव विद्यमान रहती है। अहंकारको वस अंधकार ही समझ लीजिए। जिस प्रकार घोर अँधेरेमे हाथके पास रक्खी हुई वस्तु भी नही दिखाई पड़ती, उसी प्रकार अहकारके कारण मनुष्य सामने रहते हुए इन प्रश्नोंके रहस्यको नही जान सकता। अपने मानसिक विकारो और वृत्तियोका गुलाम वन कर इन्हींको अपना रूप समझता है। जड़-जगत्की चलती-फिरती, उठती-वैठती वस्तुये मनुष्यके हृदयको अपनी ओर ऐसा आकर्षित कर लेती है कि चर्म-चक्षुओ द्वारा दिखाई देनेवाले इस संसारके परे क्या है, इस वातकी उसे सुध भी नहीं होने पाती।

'आत्मा कोई वस्तु है, मै कोई पदार्थ हूँ' इस बातको जाननेके लिए अपने चित्तको अपने विचारोकी ओर मोड़ो; और देखो कि तुम्हारे ये विचार, यह विचार-शृखला, यह भूत और वर्तमानका सम्बंध, यदि कोई वस्तु नहीं तो क्या है। वास्तवमें विचार और आत्मा ये दोनो इस प्रकार बँधे है कि एकको दूसरेसे पृथक् करना दोनोको नष्ट करना है। जैसे विचार, जैसी भावनाये, वैसा ही आत्मा, वैसा ही मनुष्य, बस इतना समझ लेना ही मानो बुद्धिकी नसैनी खड़ी कर लेना है। इसके विरुद्ध आत्माको विचारोसे कल्पना करना कि वह कोई ऐसी वस्तु है जिसका मानसिक भावनाओंसे सम्बंध नही है, लोक परलोक दोनोको नष्ट करनेका उपाय है। जब आत्मा और भावनाओका कोई सम्बंध ही नहीं, जब कर्त्तव्योका हृदयके ऊपर कोई असर ही नही, तब फिर आचार-शास्त्रका प्रयोजन ही क्या है।

आत्माको विचारोंसे पृथक् कल्पना करनेवाला सिद्धान्त जितना हानिकारक है, उतनी ही आत्माको स्थिर और सदैव एकसा रहनेवाला पदार्थ विचारनेकी कल्पना भी अमगलकारी है। यदि हमारा आत्मा सचमुच स्थिर है, यदि उसमे किसी भाँति विकार नही हो सकता तो प्रगति, उत्कर्ष और उन्नतिके लिए उद्योग करना वृथा है। जिस प्रकार सद्विचार और सत्कार्यों द्वारा आत्मिक शक्तियोंकी उन्नति होती है, वैसे ही कुविचारो और कुकार्योंके द्वारा आत्माकी शक्तियोकी अवनति भी होती है। विकाश-सिद्धातका शोध पाश्चिममे डार्विन साहबने पहले पहल भले ही किया हो; परंतु हमारे पूर्वाचार्योंने तो सहस्रो वर्ष पहले ही इसे सिद्ध कर दिखाया था। अपने भविष्यको स्थिर करना और वैसा ही उसे बना लेना प्रत्येक व्यक्तिके अधिकारमे है। चरित्र-गठनका सिद्धात ही यही है कि छोटेसे छोटा विचार और तुच्छसे तुच्छ भी कार्य आत्माके

उपर अपना असर अवश्य डालता है। मनुष्य अपनी जीवित अवस्थाके प्रत्येक क्षण पर या तो कुछ न कुछ विचार करता है अथवा कार्य करता है। विचार और कार्यके विलकुल वंद हो जानेका नाम ही मृत्यु है। जब तक मनुष्यको यह न विदित हो कि चरित्रको सुधारने अथवा विगाड़नेवाले उसके कार्य और भावनाये ही है, तब तक वह मनमानी क्रियाये किया करता है; परतु मानसिक जीवनके उक्त सिद्धान्तसे परिचित हो जाने पर ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो अपनी मनोवृत्तियों और कार्योंका परिष्कार न करेगा।

यदि विचारोकी शुद्धिके कारण मनुष्यकी चरित्रोन्नति होनेकी सभावना न होती तो ससारके सभी धर्म केवल विटम्बना मात्र ही होते; क्योकि प्रत्येक धर्मके सबसे उत्तम भागमे मन और हृदय दोनोको शुद्ध करनेकी चेष्टा की गई है। मुक्ति, मोक्ष अथवा निर्वाण ये भी तो अशुद्ध भावनाओके स्थानमे शुद्ध विचारोको प्रस्तुत कर देनेके ही भिन्न भिन्न नाम है। आजकल हमारे धर्मगुरु इस असली तत्त्वको भूल कर केवल बाह्य क्रिया-काडको ही धर्मके नामसे पुकारने लगे है। किन्तु हमारे प्राचीन महर्षि आज हजारो वर्षोंसे मन-वचन-कर्मकी शुद्धिको ही आत्मोन्नतिका राजमार्ग बताते आये है। तदनुकूल आचरण करनेमें पहली आवश्यकता विचारोंकी शुद्धि है। विचार-बलकी महिमा अकथनीय है। जिस प्रकार इतिहासकी सभी जबरदस्त क्रातियोंने विचार-बलके द्वारा ही ससारमें जन्म पाया है, उसी प्रकार अध्यात्म-संसारके विलक्षण फेर-फार भी विचार-बलके द्वारा ही सपादित होते हैं।

उत्साह, भक्ति और योग ये तीनों आत्मोन्नतिके प्रधान साधन हैं। इनके द्वारा हमारे विचारोंकी ससारमें प्रति दिन उत्तरोत्तर शुद्धि

होती चली जाती है । हृदय-शुद्धिके साथ ही साथ शांति और सुखकी मात्रा बढती जाती है । विचारोका संस्कार होनेसे मनुष्यके कार्योंमें भी अन्तर पड़ता जाता है । निदान अतमे मनुष्य उत्कर्षकी चरम सीमाको प्राप्त होकर अपने लक्ष्यको फलीभूत कर लेता है ।

महात्मा और साधारण मनुष्यकी विचार-शैलीमे बडा अन्तर है । एकके भाव दूसरेके भावोसे बिल्कुल ही उलटे है । यदि बाह्य दृष्टिसे देखो तो महात्मा बुद्ध और हममे कोई अन्तर नहीं देख पडता जैसी शरीरकी बनावट हमारी है वैसी ही उनकी; परन्तु मनके भीतर प्रवेश करते ही सारी भिन्नता एकदम देख पडने लगती है । वास्तवमें यदि मनुष्य अपने भावोंको तुलसीदासजीके हृदयस्थ भावोके बिल्कुल ही समान बना ले तो उसमे और तुलसीदासजीमे कोई अन्तर न रहेगा । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उपदेश है कि—' यदि तुम मेरे समान बनना चाहते हो तो अपने आपेको और मुझे भी भूल जाओ ।' यही अहं-कारकी मात्राको नष्ट कर देनेका उपाय है, जिसके द्वारा कुभीपाकका अधिकारी पाप-लिप्त आत्मा भी सच्चा महात्मा बन जाता है । यदि संसारमे कोई आश्चर्य-जनक घटना है तो वह यही है ।

कोई पूछे कि यदि केवल विचारोकी शुद्धि ही आत्मोन्नतिका उपाय है तो ज्ञानोपार्जन, दान, शील, तप, सयम इत्यादि क्रियाये फिर निष्फल ही ठहरी । हम कहते है नहीं; इन सब क्रियाओ और साध-नोका भी आत्मोन्नतिके लिए प्रयोजन है । केवल हमारा अभिप्राय यह है कि विचारोका सस्कार किये बिना ये सारी क्रियाये निरर्थक है ।

' मनका फेरत जुग गया, मिटा न मनका फेर ।
करका मनका छोंडकै, मनका मनका फेर ॥ '

किसी कविके ये वाक्य हमारे कथनको भली भाँति पुष्ट करते है। इसी लिए बाह्य क्रिया-काडको ही आत्मोन्नतिका कारण समझ बैठना भूल है। अपने हृदयकी ओर निरन्तर ध्यान रखनेसे समझमे आवेगा कि चित्तको वश करना कितना कठिन है।

आत्मोन्नतिके उपर्युक्त मार्गको जान लेनेसे मनुष्य अपने उन्नति-पथका रास्ता सरलतासे तय कर सकता है। जिस प्रकार समुद्रके वक्षः-स्थल पर जानेवाले जहाजके लिए दिशा-प्रदर्शक यंत्रकी आवश्यकता है उसी प्रकार आत्मोन्नतिके इच्छुक पुरुषोंको भी सच्चे मार्ग-प्रदर्शक उप-देशकी आवश्यकता है। जन-साधारण अधकार-पूर्ण दुर्गम वनमे भूले हुए पथिककी नाई कभी इस ओर और कभी उस ओर भटकते हुए जीवन-कालके अंत समय तक भी अपने आपेको नही पहचान पाते, उन्नतिके प्रयत्नकी तो बात ही क्या है। इसी लिए वे बेचारे अपनी वासनाओंके दास बन कर सदैव सतप्त हृदय रह कर चिंताओ और इच्छाओकी धधकती हुई अग्निमें जला करते हैं। उन्हें यह विदित नहीं है कि सच्चा सुख इच्छाओकी पूर्तिमे नहीं, इच्छाओंके विजय करनेमें है। आध्यात्मिक ससारके नियमोको भग करने पर वे वैसा ही दुःख पाते हैं जैसा कि प्राकृतिक नियमोंको तोड़नेमे हम लोग इस जड़-जगत्मे दुखी होते हैं।

सद्विचार और सच्चरित्रमे इतना घनिष्ट सम्बध है कि यदि दोनोंको हम एक ही नामसे पुकारें तो अनुचित न होगा। स्मरण रहे कि प्रत्येक विचार, चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, अवश्यमेव कार्यमे परिणत होता है। मानस-शास्त्रका यह नियम इतना व्यापक है कि इसके आधार पर हम कह सकते है कि यदि कार्य नहीं है तो विचार भी नही है। संसारमें ऐसे मनुष्योंकी कमी नहीं है जो कि केवल

अपने विचारोके गुमानहीमे मरे मिटते है । उन्हीको सचेत करनेके लिए हम बताये देते है कि बिना कार्यके विचार पंगुके समान निरुपयोगी है । विचारोकी एक मात्र कसौटी कार्य ही है। मनुष्यके विचार चाहे कितने ही प्रशसनीय क्यो न हो, विश्वकी भलाई करनेके चाहे वह कितने ही मंसूबे क्यो न बाँधे, पर जब तक वह कार्य-क्षेत्रमे अवतीर्ण होकर अपने विचारोके अनुकूल कर्तव्य नहीं करता तव तक संसारको उससे कोई लाभ नहीं हो सकता ।

साराश यह है कि योग्य उपायोका अवलम्बन करने पर मनुष्य अपनी आत्मा और उसकी उन्नतिके मार्गको भली भॉति जान सकता है । इसका सर्वोत्तम उपाय यही है कि शब्दावडम्बरको दूरसे ही नमस्कार किया जाय; और अपने स्वतःके अनुभव द्वारा अपनी आत्माका चिन्तन किया जाय । यदि प्रति दिन पॉच मिनिट भी यह प्रयत्न सच्चे मनसे किया जाय तो कुछ कालके अनन्तर ही मनुष्यकी आत्मामे ऐसा बल जाग उठेगा कि जिसके द्वारा वह इच्छित कार्योंको भली भॉति कर सकेगा ।

आत्म-शक्तियॉ ।

हमारा भारत धर्म-प्रधान देश है। धर्म तथा अपनी-आत्मिक उन्नतिकी ओर हमारे ऋपि-मुनियोंका ध्यान पूर्व कालसे ही चला आता है । यही कारण है कि अपने दिव्य ज्ञान द्वारा जड़-जगत्की सारी शक्तियोको भली भॉति जानते हुए भी हमारे पूर्वजोने इस विषय-सम्वधी ज्ञानको पुस्तक-रूपमे एकत्र करनेकी परवा नही की । आज भी संसारमे जड़वादका डका बजाते हुए हम लोग अपने धर्मको नही

भूल सके है। केवल इतना ही हुआ है कि हमारी धार्मिक श्रद्धा बढते बढते अंध-श्रद्धा हो गई है। धर्म, परलोक और आत्मिक उन्नतिके नाम पर हम दान, व्रत, शील, संयम और न जाने कितने कितने ढोंग करनेके लिए तैयार रहते है। धार्मिक अध-श्रद्धाके कारण हमारे प्रयत्नोका चाहे इच्छित फल न हो, चाहे उसके द्वारा अनिष्ट ही क्यो न होता हो तो भी वह पश्चिमकी अश्रद्धासे लाख गुनी अच्छी है।

धार्मिक उन्नतिके लिए हम लोग कैसी कैसी विटम्बनाये करते हैं यह एक बार देखना चाहिए। अपनी गाढी कमाई द्वारा सचित किये हुए हजारो लाखों रुपयोको धर्मके नाम मात्र पर पानीकी तरह कुढेल देना यह हमारा ही काम है। तीर्थस्थानोंकी दुर्दशा और पडो-महंतोके अत्याचारोको खुली ऑखो देखते हुए भी प्रति वर्ष इन पापियोको पोपनेके लिए लाखो रुपया देनेमे हमे संकोच नहीं होता। हट्टे कट्टे लाखों भिखारियोको भी प्रति दिन धर्मके नाम पर खिलाना हमारी अंध-श्रद्धाका दृष्टात है। इसी भॉति आत्मिक उन्नतिके जिन प्रपंचोका उपयोग किया जाता है उनका नमूना लीजिए। गलेमे कंठी और हाथमे माला लेकर राम राम बुड़बुड़ाना, भगवे कपड़े पहिन कर हाथमे लाठी और पत्तोका छत्र लिये फिरना, मुँह पर पट्टी बॉधे फिरना, भभूत रमाये हुए गॉजेकी दम लगाना, कॉटो पर पड़े रहना इत्यादि सारी चेष्टाओका क्या मतलब है? केवल लोक-दिखाऊ यश सम्पादन करना ही नही; किन्तु आत्मिक उन्नतिकी इच्छा भी है। परन्तु ऐसा करनेसे क्या आत्माकी शक्तियोका उद्धार हो सकता है! हम जोरसे कहते है कि नही; कभी नहीं! ये सारे उपाय केवल कष्टदायक और वञ्चनासे पूर्ण है।

सब लोग प्रति दिनके लेन-देनसे भली भॉति परिचित हैं। सेर भर शक्कर यदि चाहनी पड़ती है तो बनियेकी दूकानसे पैसे देकर शक्कर

खरीद सकते हैं। इसी भाँति अपने देशके अनाजको भेज कर उसके पलटेमे दूसरे देशसे हम कपड़ा मँगा सकते है। परन्तु यदि हमें आरोग्यताकी आवश्यकता हो तो आठ आने या चार आनेकी छटाक, आध पाव आरोग्यता वाजारमे विकती हुई नजर नहीं आती। इसी भाँति यदि हम पाँचसौ रुपयेमे भी एक सेर विद्या खरीदना चाहे तो भी न मिल सकेगी। मिलनेकी तो वात ही क्या, लोग हमारे इस सौदेकी वात सुन कर हमे पागल समझेगे। सिद्धात यह है कि जड़ पदार्थोंके द्वारा जड़ पदार्थोंकी प्राप्ति और चैतन्य पदार्थोंके द्वारा चैतन्य पदार्थोंकी ही प्राप्ति हो सकती है। जब धनके द्वारा विद्या, आरोग्यता अथवा कुलीनता प्राप्त होना असभव है तव क्या आत्मिक बलको प्राप्त करनेके लिए धनका भरोसा करना ठीक है? यदि केवल शारीरिक कष्टोको सहन करनेसे ही अपनी भीतरी शक्तियोका वढना संभव हो तो रोगी, दुखी, लूले और लँगड़े सभी महात्मा बन जायँ; परंतु प्रत्यक्षमे हम उलटा ही देखते है। इससे मानना पड़ेगा कि आत्मिक वलको प्राप्त करनेके लिए जिन साधनोका हम उपयोग कर रहे है वे झूठे है।

यदि मनुष्य वास्तवमे आत्मिक वलको खरीदना चाहे तो उसे इसके वदलेमें उसी जातिकी चीज देनी होगी। यदि वास्तवमे हम सयम, सहिष्णुता, धैर्य, सहानुभूति और प्रेमको अपने हृदयमे उत्पन्न करना चाहे तो हमे इनके बदलेमें अपनी मनोवृत्तियोंकी उच्छृखलता, स्वार्थ, लम्पटता, और मानसिक चपलतासे बिदा लेनी होगी। लोभी मनुष्यका द्रव्यसे चाहे कितना ही प्रेम क्यो न हो, यदि वह अपने शारीरिक आरामको चाहता है तो उसे अपना द्रव्य अवश्य खर्च करना ही पड़ेगा। इसी भाँति स्वार्थका त्याग करनेमे हमें कितना ही

कष्ट क्यों न हो, बिना उससे छुटकारा पाये हम आत्मिक उन्नति प्राप्त नहीं कर सकते। धनका सच्चा उपयोग यही है कि उसके द्वारा मनुष्य-जातिको अपने लौकिक आराम जुटानेमे सुविधा हो। वह कृपण, जो लक्ष लक्ष मुद्राओके रहते भी द्रव्य-प्रेमके कारण आवश्यक सामग्रियोको नहीं जुटाता, निस्सदेह दयाका पात्र है। इसी भाँति चैतन्य-जगत्मे भी जो व्यक्ति अपनी मानसिक वृत्तियोंके वदलेमे सच्चे सुख और शातिको प्राप्त करनेमें हिचकता है वह मूढ़-बुद्धि है। प्रकृतिने मनुष्यके हृदयमे क्रोधकी सृष्टि इसी लिए की है कि उस पर विजय प्राप्त करके क्षमा खरीदी जाय। स्वार्थके वशीभूत होकर मनुष्य दूसरोंकी सुख-सामग्रीको छीन-छान कर अपने सुखके लिए एकत्र करता है। दूसरोंकी उसे जरा भी चिता नहीं रहती। अत एव वह कृपण मनुष्यके सदृश अपना द्रव्य अपने ही पास रखना चाहता है, परंतु धर्मका सिद्धात इसके विपरीत है। धर्म चाहता है कि मनुष्य अपने सुखका उपभोग स्वतः भी करे और दूसरे मनुष्योको सुख देनेके लिए भी तत्पर रहे।

वे आत्मिक शक्तियाँ कौन कौन हैं जिनकी वृद्धिके लिए हमे प्रयत्न करना चाहिए। दयालुता, मैत्रीभाव, समवेदना, संयम, धैर्य, सत्य, शाति और विश्व-व्यापी प्रेम, ये सारे भाव जिस समय मनुष्यके हृदयमें पूर्ण-रूपसे विकसित हो जाते हैं उसी समय उसका आत्मा विस्तीर्ण होते होते सारे विश्वमें फैल जाता है। यदि इन भावोंको प्राप्त करना चाहते हो तो आजहीसे अधीरता, क्रोध, निर्दयता, घृणा और स्वार्थ तथा अपनी वृत्तियोंको दमन करनेका प्रण कर लो। ज्यों ज्यों इनकी मात्रा हृदयसे घटती जायगी, त्यों त्यों ही सुख और शातिकी मात्रा वढ चलेगी।

जिस समय एक बार तुम्हे स्वार्थ-त्यागके अपूर्व आनन्दका थोड़ासा अनुभव हो जायगा तब तुम्हे स्वार्थसे पूरी घृणा हो जायगी और फिर तुम उसके चुगलमे कभी न फॅसोगे। निदान सच्ची शाति अनुभव करके डकेकी चोट सारे ससारको तुम समझा सकोगे कि सच्चे सुखका मार्ग क्या है ! सच्चे महात्मा बन कर भूले हुए प्राणियोको पार लगानेकी पुण्य-पूर्ण इच्छा क्या तुम्हारे हृदयमे नहीं उठती है !

वृत्तियोंकी मादकता।

शराबसे सभी समझदार लोग घृणा करते है। वह इस लिए नहीं कि केवल हमारे धर्मशास्त्रोमे उसका निपेध किया गया है; किंतु इस लिए कि उसके साक्षात् फल दुखदाई देख पडते है। यह बात नहीं है कि मद्य शारीरिक स्वास्थ्यके लिए सदैव हानिकारक हो। मात्रासे अधिक पीने पर तो उससे रोगोकी उत्पत्ति अवश्य होती है; परंतु मात्राके अनुकूल वह तन्दुरुस्तीको बहुधा लाभ भी पहॅुचाता है। लोग कहते है कि इसके द्वारा धनका नाश हो जाता है, परंतु हम कहते है कि दरिद्रता अपव्ययके कारण ही होती है। इसके सिवाय यदि तुम्हे अपने धन नष्ट होनेका भय न हो तो क्या तुम शराब पीने लगोगे ? साराश यह है कि स्वास्थ्यकी हानि, धनका नाश, झगड़ालूपन इत्यादिक दोप इतने व्यापक नही है कि जिनके कारण मद्यका स्पर्श तक नीच समझा जाय। तब फिर मद्यका वह कौनसा अपगुण है जो इन सबसे भारी है ? हम कहते है कि वह मद्यका मोहकपन है। चित्तको वह इतना विह्वल बना देता है कि मद्यपायीको अच्छे और भलेका ज्ञान नहीं हो सकता। मनुष्यकी विचार-शक्तिको नष्ट

करके वह उसे पशु वना देता है। अपने हानि-लाभको जो विचार नहीं सकता, जिसे माता और स्त्री तकके पहचाननेकी सज्ञा नहीं रहती उसके समान भयंकर जन्तु और कौन होगा! प्राचीन समयकी बगालकी मनुष्यको गधा वना देनेवाली मंत्रविद्याका नाम सुन कर हमे आज भी भय माळूम होता है; परतु अपने सामने मनुष्योंको गधे वनते देख कर हमें जरा भी खेद नहीं होता। भले और बुरेको विचारनेकी शक्ति इतनी वहुमूल्य है कि हमें धन, कुटुम्ब और प्राणों तकका खो देना मजूर है. परतु उसे खोना स्वीकार नहीं है। जो शत्रु हमारी इस वहुमूल्य सम्पत्तिको हरण करनेवाला है उसके समान द्रोही और कौन है!

धर्मशास्त्रोंने मद्यपानका निषेध इसी लिए किया है कि उसके कारण मनुष्यत्व जाता रहता है, भला और वुरा सोचनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। शराबके दोषोंको दिखानेवाली और उसका प्रचार रोकनेवाली समितियां मनुष्य-जातिके धन्यवादकी पात्र है; क्योंकि वे सैंकडों हजारों मनुष्योकी विवेक-बुद्धिको नष्ट होनेसे बचाती हैं।

जड-ससारकी ओरसे आंख उठा कर जब हम अपने हृदयके भीतर देखते हैं तो मारे भयके हमारा कलेजा कांपने लगता है। वापरे वाप! मद्यके दादा, परदादा, भाई-वहिन और सारा कुटुम्ब तो हमारे हृदयहींमे आश्रय ले रहा है! अधिक नहीं केवल क्रोध, लोभ, ईर्षा, अभिमान और स्वार्थहीकी ओर दृष्टिपात करो; और देखो कि क्या ये मद्यसे अधिक मादक नहीं है! वाहरी मनुष्य-जाति! 'दियातले अंधेरा' इसीका नाम है। वडे वडे महात्माओंको देखिए, यदि मद्यपायीकी परछाईं भी उनके ऊपर पड जाय तो वे दस वार स्नान करेंगे; परंतु उन्हींमें क्रोधकी मात्रा इतनी ज्यादा देख पड़ेगी कि थोड़ा भी कारण प्रस्तुत होने पर वे आपको शाप देनेके लिए तैयार हो जायगे।

केवल शाप इस लिए कि उनके पास तलवार नहीं है और कानून उन्हे दबाये हुए है ।

मनुष्यकी नीच वृत्तियोंमे क्या सचमुच इतना नशा मोजूद है कि वे शराबसे सौगुनी तेज समझी जायॅ ? यदि विचार-पूर्वक केवल क्रोधके परिणामो पर ही विचार करे तो विदित होगा कि सचमुच क्रोधका नशा मद्यके नशेसे कई गुना अधिक है । यदि मद्यमे मतवाला होकर मनुष्य एक दो दिन संज्ञाहीन रहता है तो क्रोधका नशा बरसो नहीं उतरता । मद्यके नशेमे मतवाला होकर मनुष्य यदि कोई अनर्थ भी कर बैठता है तो चैतन्य लाभ करने पर उसके लिए पश्चात्ताप करता है और अपनी भूलको स्वीकार करता है। परतु क्रोधके आवेशमे आकर मनुष्य जो जो अनर्थ करता है उनको वह भले और न्याय-समत समझ बैठता है । इसी भॉति लोभके परिणामोको विचारनेसे भी हृदय कॉप उठता है । ससारमे आज तक जितने भयानक पाप और हत्याये तथा रक्तकी नदियोंको बहानेवाले भीपण सग्राम हुए है, उन-मेसे प्रायः सभीका कारण लोभ पाया जायगा । कहॉं तक कहे, शराब और लोभको समान बताना अन्यायपूर्ण है ।

ईर्पा और स्वार्थके विपयमे विचार करनेसे मालूम होता है कि मनुष्य-जातिकी जितनी हानि इन राक्षसोके द्वारा हो रही है, वह वचनातीत है । साधारण मनुष्योकी तो बात ही क्या है, बड़े बड़े महात्मा भी इनके चुगलसे छुटकारा नहीं पा सकते। व्यक्तिगत अनर्थोंकी बात तो जाने दीजिए; किंतु सभ्यताको इनके द्वारा कितनी हानि पहुॅच रही है यह विचारना चाहिए । राष्ट्रोकी पारस्परिक प्रतिद्वद्वता और विरोध, व्यापारकी चढबढ और शक्तिके लोभके कारण कैसे महासमर उपस्थित है ! बड़े बड़े वैज्ञानिक भी स्वार्थान्ध होकर मनुष्य-जातिके

संहारक यन्त्रोंका आविष्कार करके उन्हे गोपनीय रखते है । शासित जातियोंको चिरकाल पर्यत गुलामीमें जकड़े रहनेका नीच प्रयत्न भी तो स्वार्थहीकी करामात है । यदि इन दोनो दुष्टोंका काला मुँह हो जाय तो मनुष्य-जातिकी उन्नतिका भारी कंटक दूर हो जाय ।

जिस समय मनुष्य अपनी वृत्तियोंके अधिकारमें हो जाता है उस समय वह अंधा हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे कुछ सूझ ही नहीं पड़ता; परतु उसे जो कुछ दिखाई देता है उसे वह यथार्थ रूपसे नहीं देख सकता । क्रोधी मनुष्यको, जिस ओर वह देखता है उसी ओर, क्रोधकी सामग्री ही नजर आती है। इसी प्रकार लोभका तीव्र सचार होने पर लोभी मनुष्य जैसे बने वैसे अपनी इच्छित वस्तुको अधिकृत करना चाहता है। वह सोचता है कि 'हाय आज एक रुपयेके दो मन चॉवल क्यों नहीं बिकते ! पर-मात्माने ससारकी सारी सामग्रियोंको क्यों महँगी कर रक्खी है !' फलतः उसके हृदयमें बड़ी भारी वेदना होने लगती है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो ससारका सारा मनुष्य-समूह आँखों पर पट्टी बँधे हुए घोड़ेकी नाई मनमानी दिशाओंमें भाग रहा है।

मानसिक अशातिका कारण क्या है ? मनुष्य चाहते है कि संसा-रके सब पदार्थ अपने अपने स्वभावको छोड़ कर उन्हींकी इच्छानुकूल वर्ताव करने लग जायँ; परंतु पदार्थ वेचारे ऐसा करनेसे लाचार हैं। इस लिए जब वे मनुष्यकी इच्छाकी पूर्ति नहीं करते तभी यह खिसिया कर दुखी होने लगता है । क्या ही अच्छा होता कि मनुष्य वस्तुओके यथार्थ स्वरूपको देख कर अपनी आवश्यकताओंको उनके अनुकूल बनानेका प्रयत्न करता। परंतु स्मरण रहे कि जब तक हम अपनी

मानसिक वृत्तियो पर अधिकार प्राप्त करना न सीखेगे तब तक ऐसा होना असंभव है ।

आध्यात्मिक उन्नति और सच्चे सुखको प्राप्त करनेका राजमार्ग वृत्तियोका शासन है । जो लोग वृत्तियोके दास बन कर अपनी इच्छाओकी पूर्तिके प्रयत्नोहीमे मग्न रहते है, उनका आत्मा सदैव दुर्बल रहता है। आवश्यक सामग्रीके उपस्थित न होने पर उन्हे जैसा तीव्र दुःख होता है उसका अनुभव उन्हींको होता है । इसी दुःखमे उन्मत्त होकर वें नाना प्रकारके अनर्थ कर बैठते है । यदि ऐसे दुःखोसे छुटकारा पाना है तो अपनी इच्छाओके गुलाम मत बनो । प्रत्येक इच्छाके उत्पन्न होने पर देखना चाहिए कि कौनसी वृत्ति उत्तेजित होकर उस इच्छाको उत्पन्न कर रही है । निदान यदि यह इच्छा न्याय-संगत न हो तो उसे रोको और उसे हृदयमे फिर कभी स्थान न दो ।

शांत जीवनकी प्राप्ति ।

प्राणी मात्रके हृदयमे सुखको प्राप्त करनेकी इच्छा सदैव विद्यमान रहती है । चिऊँटीसे लेकर साधारण मनुष्य और राजे-महाराजे तक सभी प्राणी अपने जीवनको दुःखोसे रहित बनानेका प्रयत्न किया करते है । धन कमाना, आरोग्य रहनेके उपायोका अवलम्बन करना, कुटुम्बकी वृद्धिकी इच्छा रखना और धर्मके कार्योंमे योग देना, ये सब कार्य सुख-प्राप्तिके उद्देश्यकी पूर्ति करनेवाले समझे जाते है । जिन लोगोका विश्वास है कि मानव-जीवन अनंत है और उसका अंत वर्तमान जिन्दगीकी समाप्तिके साथ ही नही हो जाता, वे लोग अपने

सकते। आत्म-विश्वास हो जाना भी तो आत्मिक उन्नतिका एक फल ही है। परंतु जरा सोचो तो सही, तुम्हारे हृदयमे बैठा हुआ वह भगवान् अनंत शक्तिशाली, सच्चा परमेश्वर क्या नहीं कर सकता! उसकी अनंत शक्तिको भूल कर ही तुम आज पंगु बन रहे हो। देखो, विचार करो और उद्योग करो। संसारमे ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको तुम न कर सकते हो, अपनी आत्माकी उन्नति कर लेना तो कोई बात ही नहीं। यदि एक बार भी दृढ निश्चय करके तुम स्वर्गका दरवाजा खोलनेका प्रयत्न आरभ कर दो तो थोडे ही समयमे तुम अवश्य सदेह स्वर्गमे भी पहुँच सकोगे।

निश्चल और सुस्त जीवनमें पड़े पडे लोग निश्चेष्ट और डरपोंक हो जाते है। शत्रु पर विजय प्राप्त करनेके लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं उनका आनंद ऐसे मनुष्योको स्वप्नमे भी दुर्लभ है। 'संग्रामका आनद' इस वाक्यको सुन कर ऐसे लोग भौचकसे रह जाते हैं; परंतु सच पूछो तो इस अकर्मण्यताका छा जाना ही मृत्युका निशान है। समझ लेना चाहिए कि ऐसे मनुष्योंकी मृत्यु अब निकट ही है। यदि जड़-संसारकी ये बातें सत्य है तो चैतन्य-संसारमें भी इन्हे सत्य समझो। विचारशील मनुष्य यदि अपने हृदयमें देखे तो उसे महाभारतका सच्चा दृश्य दिखाई दिये बिना न रहेगा। पाप-वासनाओ और आत्मिक शक्तियोंका घोर संग्राम मानव-हृदयमें सदैव ही मचा रहता है। दुर्बल आत्मा वासनाओंसे पराजित होकर उनके दास बन जाते हैं। इसके विपरीत बलवान् आत्मा इन वासनाओको पराजित कर उन्हें अपने काबूमें रखते हैं। इस घोर युद्धमें विजय प्राप्त करनेका अनुपम आनंद उन्हीं विजयी आत्माओंको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थितिसे संतुष्ट हो अकर्मण्य बन रहे हैं उन लोगोंसे न तो कुछ लौकिक उन्नति ही हो सकती है और न

मनके ही भाव है; उसकी ही सम्पत्ति है। यदि आत्मा शुद्ध और बलवान् है तो बाहरी अनिष्ट सामग्रीके उपस्थित होने पर भी वह सुखी और शात रह सकता है। यदि चित्त दुर्बल है, पाप-वासनाओसे पूर्ण और शंकासे क्षुब्ध है तो उसे स्वर्गमे भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसी कारण सुखके इच्छुक विचारशील मनुष्य अपनी आत्माको उन्नत बनानेका प्रयत्न सदैव किया करते है।

आत्मा क्या वस्तु है ? दर्शन-शास्त्रकी बालकी खाल निकालनेवाली तर्क उसे चाहे जो सिद्ध करे, परन्तु बुद्धिके द्वारा विचारनेसे मालूम होता है कि मनुष्यके विचार और कार्योंके समूहका नाम ही आत्मा है। इनके अतिरिक्त आत्मा और कोई वस्तु है अथवा नहीं इसका बोध होना कठिन ही नहीं, बरन असभव है। जैसे विचार और कार्य हैं वैसा ही आत्मा है। यदि विचार और कार्य नीच है तो आत्मा भी नीच और दुर्बल होगा। यदि विचार और कार्य उन्नत और सुशील हो तो आत्मा भी बलवान् होगा। इसी लिए जो अपने आत्माको उन्नत करना चाहते हैं, जो अपने मनको दृढ बनाना चाहते है उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने विचार और कार्योंकी सँभाल रक्खे। चरित्र-गठन, मनो-बल, पुण्य, उन्नति और धर्म सभी उसी उपायके भिन्न भिन्न नाम है।

लोग समझते होगे कि जिस आत्माको हम देख नहीं सकते, जिसका हमे अनुभव नहीं है उसकी उन्नतिका उपाय करना क्या हमारी शक्तिके भीतर होगा ? ऋषि-मुनि लोगोसे भले ही यह काम बन सके; परंतु नाना प्रकारके सासारिक कार्योंमे फँसे रहने पर क्या हम लोग भी इस कार्यको सम्पादन कर सकते है ? अपने तईं इस प्रकार शक्ति-हीन समझ लेनेका एब बड़े बड़े महात्माओमें भी पाया जाता है। बेचारे जन-साधारणको इसके लिए हम दोपी नहीं ठहरा

ऐसे मनुष्य यदि विश्वकी ओर एक वार भी आँख उठा कर देखे तो उन्हे विदित होगा कि संसारके सभी कार्य नियम-वद्ध है । प्रकृतिके साम्राज्यमें, मनुष्यकी सृष्टिमे और नभोमंडलके तारागणोमे——जिस ओर देखिए उसी ओर——नियमित कार्यवाही ही दृष्टिगोचर होती है। जहाँ नियम नही वही अराजकता और अधेरका राज्य है । और तो क्या, घासके छोटे छोटे तिनके भी प्राकृतिक नियमोसे बँधे हुए दिखाई पड़ते है । नियम-पूर्ण ससारमे मनुष्य अनियमित रह कर अपनी सत्ताको कितने दिन जीवित रख सकता है ?

सच्ची स्वतंत्रता नियमोंके पालनका ही नाम है । नियमोका भंग करना दूसरोंको दुःखदायी और अपनेको भी त्रासदायक है । मानव-समाजकी रचना ही ऐसी विचित्र है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने सुखो और दुःखोके द्वारा दूसरोंको दुखी अथवा सुखी वनाना ही पडता है। यदि तुम चाहो कि अपने सुखको तुम्हीं अकेले भोग लो और दूसरा उनका भोग न करने पावे तो ऐसा करना असंभव है। यदि स्वतत्रताके सुखका उपभोग करना चाहते हो तो कुछ स्वार्थ-त्याग भी तो करना होगा। और वह स्वार्थ-त्याग यही है कि समाज-निर्मित नियमोकी पाबंदी की जाय।

स्थूल-जगत्मे यदि नियमोका पालन करना व्यक्ति और समाजके लिए इतना आवश्यक है तो सूक्ष्म-जगत्मे भी उसके अनुकूल चलनेकी उतनी ही आवश्यकता है। आत्मिक उन्नतिके मार्गमे भी हमें पथ-प्रदर्शककी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि यात्राको जाते समय किसी भयानक जंगलको पार करनेमे रास्ता दिखानेवालेकी है। जो लोग विश्वास करते हैं कि परमात्माकी कृपा हो जानेसे क्षण भरमे मुक्ति प्राप्त हो जायगी वे भूल करते है। उन्हे आत्मोन्नतिके गौरव और उसकी कठिनाईका थोड़ा भी अनुभव नही है। और तो क्या

पारलौकिक ही। उन्नतिका मूल मंत्र यही है कि मनुष्यके हृदयमें असंतोप हो। अपनी वर्तमान स्थितिमे जो जो दोप है, जो जो असुविधाये अथवा तकलीफे है उनसे हृदयमें जब तक सच्चा असंतोप न पैदा हो जाय तब तक उन्नतिकी कल्पना ही नही हो सकती। दैनिक जीवनका यह सिद्धान्त आत्मिक उन्नतिके मार्गमे भी अक्षरशः सत्य है। जब तक हम लोग अपने अवनत और गिरे हुए चरित्रको देख उससे असंतुष्ट होकर उसकी उन्नतिका उपाय न करेगे तब तक सुखकी बाते कोसो दूर है। स्वावलम्बन, साहस और निरन्तर उद्योग यही उन्नतिका मूल मत्र है। जिन लोगोने इसे अपने हृदयमे धारण कर किया है वे ही सुखके अधिकारी है।

कार्य और उनके फल।

बहुतेरे मनुष्योको नियम और कानूनके नामसे घृणा है। वे समझते है कि नियमो द्वारा बद्ध होना मानो अपनी स्वतंत्रताको नष्ट करना है। मनमाना कार्य करनेके लिए असुविधा होनेका नाम ही उनकी समझमे स्वतंत्रता है। साफ शब्दोमें यह कहा जा सकता है कि स्वतत्रता और उच्छृंखलताको उन्होने एक ही मान रक्खा है। ऐसे मनुष्य न तो समाजके नियमोकी ही परवा करते है और न व्यक्तिगत आचरणकी सीमाओंको ही समझते है। ‘रूढिके दासत्व’ का नाम ले ले कर ये लोग समाजके सिद्धान्तोकी जड़ काटते है और अपने आचरणको नीच बनाते है। ‘खाना-पीना और मौज उड़ाना’ इसीको इन लोगोने अपना ध्येय मान रक्खा है।

तो यह है कि पाप-कर्मोंके लिए सच्चे चित्तसे दुखी होने पर तुम्हारे हृदयके भीतर बैठा हुआ आत्मा द्रवीभूत होकर भविष्यमें पाप कार्योंमें प्रस्तुत न होगा। वास्तवमें अपने बचानेवाले तुम्हीं हो। इसी भाँति अपने किये कार्योंका फल देनेवाला किसी दूसरे व्यक्तिको मानना भी दुर्बलताका सूचक है। जब तक आत्म-श्रद्धा, आत्म-विश्वास और कर्तव्य-ज्ञान न हो उन्नतिकी आशा करना विटम्बना है।

'अपने किये कार्योंका फल हम्हींको भोगना पड़ेगा' इस सिद्धान्तको भी मनुष्य वास्तविक रीतिसे नहीं मानते। यदि कोई मनुष्य हमारा अपराध करे तो उसका गला दबा कर उसे दंड दिलानेके लिए हम तैयार हैं; परतु अपनी बात आते ही हम इस सिद्धान्तको भूल जाते हैं। कितना अच्छा हो, यदि मनुष्य-जाति इस सिद्धान्तको मुक्त कंठसे स्वीकार कर ले। अपने अपराधोंका फल भोगते समय लोग दुखी होते हैं; परंतु वास्तवमे उस समय उन्हें सुखी होना चाहिए। नियमानुकूल कार्य होते देख समझदार लोग प्रसन्न होते हैं और मूर्ख दुखी। जब साधारण व्यवहारमें हम कार्य-फलके सिद्धान्तको भली भाँति न माननेके कारण इतने दुखी हो रहें तब नैतिक उन्नतिकी तो बात ही क्या है।

पाप-कार्योंका बुरा परिणाम होते देख लोग संसार और उसके नियमोंको कोसते हैं। ऐसे लोगोंका आचरण ठीक उस कुत्तेके समान है, जो लाठी मारनेवालेकी परवा न करके लाठीहीके ऊपर क्रोध करता है। अपने दोषको न देख किसी दूसरेके सिर अपराध लगाना मूर्खता है। तुम्हारी सारी इच्छाओंकी पूर्तिहीके लिए तो ससारकी सृष्टि नहीं हुई है! और यदि मान भी लिया जाय कि ससारकी सभी वस्तुये तुम्हारी इच्छाके अनुकूल ही आचरण करने लगें तो उन बेचारियोंकी

उन्हें अपने जिम्मेदारी और कर्तव्यका भी ज्ञान नहीं है । और इसका परिणाम यह होता है कि परमात्माके सिर सारी बला टाल कर ऐसे लोग दिन दिन नीचेकी ओर गिरते जाते है ।

आत्मिक उन्नतिके नियमोंकी ओर देखनेसे प्रगट होगा कि वे बड़े ही सरल है । सच पूछो तो हम उन्हे दिन-रात अपने व्यवहारमें काममे लाया करते है । उनमेंसे पहला नियम यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने कार्योंका स्वतः जिम्मेदार है । यह नहीं हो सकता कि हम तो सुस्त पडे रहे और दूसरोकी मेहनत पर गुजर चली जाय । दूसरा नियम यह है कि कार्यके अनुकूल ही फल होता है । बुरे कार्योंका परिणाम निस्संदेह बुरा ही होता है । कुछ समयके लिए दुर्जन अपने प्रयत्नोंमे भले ही सफल हो जायँ, परंतु अन्तमे उन्हे अपने कर्मोंका बुरा फल अवश्य भोगना पडेगा । वस इन्हीं दोनो नियमोको मनन करके मनुष्य यदि आत्मिक उन्नतिके पथ पर गमन करे तो वह अपना लक्ष्य अवश्य सिद्ध कर सकेगा ।

देखना चाहिए कि इन नियमोका पालन हम लोग कहाँ तक करते है । सभी लोग परमात्माको दयालु कह कह कर पुकारते है । इसमें संदेह नहीं कि परमात्मा परम दयालु है, उसमे कठोरता अथवा क्रोधके लेश मात्र तकका आविर्भाव नहीं है । परंतु परमात्मा दयालु है, इस लिए वह बीचमे पड़ कर हमें अपने पाप-कर्मोंका फल भोगनेसे बचा लेगा ऐसा मानना भ्रम-पूर्ण और दुर्वलताका सूचक है । इसका अर्थ यही है कि मजेसे जो चाहो सो किये जाओ; केवल शाम सबेरे दस पाँच मिनट परमात्माका नाम ले लिया करो । विचार-पूर्वक देखनेसे विदित होता है कि परमात्माके दयालुपनको मान कर मनुष्य-जातिका एक भारी समुदाय कैसा निश्चेष्ट हो रहा है । वास्तविक बात

प्रकारकी यातनाओ द्वारा शरीरको कष्ट देकर सुखा डालनेको आत्म-त्याग समझते है । कितने लौकिक यशकी इच्छासे प्रेरित होकर अपने धन और प्राणोको समाज और देशके नाम पर न्यौछावर कर देनेको आत्म-त्याग मानते है । कहाँ तक कहे, दुनियामे जितने उत्तम कर्म्म हैं, वे सव आत्म-त्यागके स्वरूप ही समझ जाते है ।

आत्म-त्यागका सच्चा स्वरूप उपर्युक्त सव दृष्टान्तोसे भिन्न और विलक्षण है । आत्म-त्याग स्वार्थ-त्यागका ही दूसरा नाम है । और स्वार्थ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो हृदयसे वाहर फेकी जा सके । वह तो मनकी एक अवस्थाविशेष है जिसको दूसरे रूपमे वदलनेकी आवश्यकता है । आत्म-त्यागका मतलव आत्माको नष्ट करना नहीं, परंतु वासनाओ और इच्छाओसे लिप्त आत्माका त्याग है । स्वार्थका सच्चा अर्थ क्षणस्थायी सुखोमे फॅस कर सदाचरण और विवेकको भूलना है । स्वार्थ हृदयकी उस वासनामय और लोभ-पूर्ण अवस्थाका नाम है जिसका त्याग किये बिना सत्यका उदय नही हो सकता और न शांति और सुखका ही हृदयमे सचार हो सकता है ।

केवल वस्तुओंका त्याग ही सच्चा स्वार्थ-त्याग नहीं कहला सकता; किन्तु वस्तुओकी इच्छाका त्याग करना ही वास्तविक त्याग है । मनुष्य अपने धन, कुटुम्ब, परिवार और घरको छोड़ कर भले ही संन्यासी वन जाय; परंतु जव तक मानसिक वासनाओ और इच्छाओंका दमन न किया जाय तव तक सारी वाह्य क्रियाये केवल ढोंग मात्र है । सव लोगोको विदित है कि महात्मा वुद्ध संसारको त्याग कर जंगलमे भी जा वैठे; परंतु छह वर्ष तक उनके हृदयमें ज्ञानका उदय न हो सका; क्योंकि वे इतने दिनों तक अपने मनको वशमे न कर सके थे । ज्यो

आपत्तिका क्या ठिकाना रहेगा ! तुम्हारे समान अगणित मनुष्योंकी इच्छाओंकी एक साथ पूर्ति करना कैसे संभव है ? जब तुम स्वतः थोडा भी स्वार्थ-त्याग करनेके लिए तत्पर नहीं हो, तब दूसरोंसे तुम्हारा ऐसी आशा करना कहाँ तक ठीक है ? यदि तुम स्वतः नियमोंको पालन करो तो ससारकी सभी सामग्री तुम्हे सुन्दर प्रतीत होगी और तुम्हारे हृदयकी सारी अशाति एकदम नष्ट हो जायगी ।

आत्म-त्याग ।

संसारके सभी वडे वडे उपदेशकोंने स्वार्थ-त्यागको वडा धर्म वतलाया है । लौकिक उन्नति हो अथवा आत्मिक, स्वार्थ-त्याग किये विना मनुष्यको सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती । विना स्वार्थ-त्यागी महात्माओंके उत्पन्न हुए समाजका कल्याण नहीं हो सकता । जिन मनुष्योंकी सारी शक्तियाँ अपनी ही इच्छाओं और आवश्यकताओंकी पूर्तिमे नष्ट होती हैं, जिन्हें—ससार चाहे भाडमें चला जाय, पर—अपनी विलासिताको क्षण भर भी छोडनेकी फुरसत नहीं है ऐसे व्यक्तियोसे समाजकी उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के अमोघ मंत्रकी हृदयमे धारणा किये विना मनुष्यके हृदयमें दूसरोंकी भलाई करनेकी इच्छा उत्पन्न ही नहीं हो सकती ।

आत्म-त्यागका सच्चा मतलब समझे विना लोग उसके बदलेमें कई अन्य क्रियाओका आचरण करके ही सतुष्ट हो जाते है । यहाँ तक कि कई लोगोने तो उसका मतलब आत्म-घात तक समझ रक्खा है । कितनोका विश्वास है कि वाह्य वस्तुओं—धन, कुटुम्ब, ऐश्वर्य और घर-बार—को छोड़ कर जगलमे जा वैठना ही आत्म-त्याग है । कितने नाना

अत एव ज्यो ज्यों इच्छाओंको बुद्धि-पूर्वक दमन किया जाता है त्यों त्यो आत्म-त्याग सुखका कारण होता जाता है । इस रहस्यको बिना समझे ही पश्चिमके जड़वादी दार्शनिकोने त्याग-मार्गकी निन्दा की है।

आत्म-त्याग करते समय मनुष्यको स्मरण रखना चाहिए कि किन किन बातोका त्याग करनेसे उसका आत्मा शुद्ध और बलवान् होगा। घृणा, ईर्षा, लोलुपता, मान, माया, असत्य और छल-कपट ये सभी मानसिक भाव त्यागने योग्य है। धन-कुटुम्ब और घर-बारको त्यागनेके पहले अपने दैनिक व्यवहारमें इन भावोंका त्याग करना ही सच्चा आत्म-त्याग है। इन भावोके कारण मनुष्यका आत्मा बद्ध है। वह इस कारण अन्य दूसरे आत्माओके साथ स्वछंदता-पूर्वक नहीं मिलने पाता।

सौजन्यता, प्रेम और सहानुभूति ये सब एक आत्माका दूसरी आत्माके साथ प्रेम-पूर्वक मिलनेके ही नाम है। इस लिए अपने संकुचित क्षेत्रको विस्तृत बनानेके लिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपने हृदय-स्थित क्षुद्र भावोंको निकाल डालें। प्रारम्भमें इनका परित्याग करना कष्टदायक प्रतीत होगा; परंतु धीरे धीरे फिर वही कष्ट सुखके रूपमें परिवर्तित होता जायगा। इस मार्गके सम्मुख होने पर पहले तो मनुष्यको स्वर्गीय सुखका अनुभव कभी कभी होगा; परन्तु कुछ कालके अनन्तर फिर यही सुख उसके हृदय-मान्दिरमे अधिक समय तक विश्राम लेगा। यहाँ तक कि अन्तमे वह वहीं निवास करने लगेगा और उस मनुष्यको यही मानव-जीवन स्वर्ग तुल्य प्रतीत होने लगेगा

इसी अंतिम अवस्थाका नाम कृतकृत्य दशा है। जब मनकी सभी वासनाओ पर विजय प्राप्त कर लिया जाता है तब किसी बातका त्याग करना बाकी नहीं रह जाता है। जब आत्माकी सभी शक्तियोका पूर्ण विकाश हो चुकता है तब मनमें किसी बातकी चिन्ता नहीं रह

ही उनका हृदय शुद्ध हुआ त्यों ही एकदम उनके ज्ञान-नेत्र खुल गये और चराचर जगत् उन्हे प्रत्यक्ष हो गया।

यदि चित्तको वशमे किये बिना कोई मनुष्य वस्तुओका परित्याग कर दे तो उसे शांतिके बदले क्षोभ और दुःख प्राप्त होगा। यही कारण हैं कि सैकड़ो नवयुवक साधु अपने वेशके प्रतिकूल आचरण करने लगते है। केवल मान-बड़ाई अथवा यशःप्राप्तिके लिए छोड़ा हुआ संसार थोड़े ही समयमे उनके हृदय पर ऐसा आकर्षण करता है कि वे बेचारे अपने आवेगोको सहनेमे असमर्थ हो जाते है। यदि बाह्य वस्तुओकी ममता नहीं घटी है तो उनका परित्याग करना ही मूर्खता है। मानसिक शातिको नष्ट करनेवाले बाह्य पदार्थ नहीं है। अपने हृदयमे इन पदार्थोंके प्रति जो इच्छा उत्पन्न होती है वही सुख और शांतिकी चुरानेवाली है।

लोग कहते है कि इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले आनन्ददायी पदार्थोंका त्याग करना बड़ा दुस्तर और कठिन कार्य है। मीठे मीठे भोजन, सुन्दर शृगार, सुन्दरी स्त्रियॉ और धन-ऐश्वर्यको देख कर उस मनुष्यके हृदयमे कितना दुःख होता होगा जिसने अपनी बे-समझीके कारण इनका त्याग कर दिया है। लोगोंका यह अनुमान सच और झूठ दोनो हो सकता है। यदि त्यागे हुए पदार्थके प्रति तुम्हारे हृदयमे थोडा भी मोह बना है तो उस पदार्थको देखते ही तुम्हे सचमुच आन्तरिक कष्ट होगा। तम्बाकूको दूसरोके दबावसे त्याग देनेके कारण किस प्रकार दुःख होता है इसका बहुतसे आदमियोंको अनुभव होगा। इसके विपरीत यदि किसी पदार्थके अवगुणोंको देख कर तुम्हे उससे सच्ची घृणा हो गई है और तुमने फिर उसका त्याग किया है तो तुम्हारे हृदयमे उस वस्तुका स्मरण होते ही आनन्दकी जागृति होगी।

कार्यमे वाधा डालता है, अमुकने मुझसे ऐसी वात कही जिससे मुझे क्रोध आ गया, चार आदमियोमें बैठते है तो लाचार होकर ऐसा काम करना ही पडता है--, इत्यादि वाते अपने दोपोको दूसरोके सिर मढ़नेके प्रयत्न नहीं तो क्या है ?

कितना अच्छा हो यदि मनुष्य कोई अपराध करनेके साथ ही उसे स्वीकार करनेमे आनाकानी न करे। नैतिक उन्नतिकी सवसे पहली सीढी यही है कि मनुष्य अपने अपराधोको समझने लगे। हजारो मनुष्य तो बुरे कार्योंको करते रहते हैं और उन वेचारोको रंच मात्र भी खवर नहीं कि ये कार्य वास्तवमे बुरे है। जिस समय चोर चोरीको सचमुच बुरा समझने लगे उसी समयसे जान लो कि अव वह रास्ते पर आ रहा है। परन्तु केवल दिखाऊ मनकी इच्छासे अथवा किसीकी हॉमें हॉ मिलानेके अभिप्रायसे बुरे कार्यको बुरा कह देनेसे कोई लाभ नहीं। इससे तो उलटी हानि है। कुकार्यसे घृणा होनेकी वात तो दूर रही, ऐसा करनेस तो उसने अपने आपको ही ठगा कहना चाहिए। प्रवञ्चना अथवा मायाजाल इसीका नाम है। परंतु देखा जाता है कि लोकमे मनुष्योने इसे ही सभ्यता और शिष्टाचार मान रक्खा है। ऐसे लौकिक व्यवहारकी अवहेलना करनेसे समाज भले ही असतुष्ट हो जाय; परंतु उन्नतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको इसमे आगा-पीछा न करना चाहिए।

अपने किये हुए अपराधोको दूसरोके सिर मढते फिरनेकी कुटेवके कारण मनुष्य अपने एवोको नहीं देख सकता। जो कार्य उसने किया है उसका बुरा फल होने पर वह तुरंत किसी दूसरे व्यक्तिको पकड़नेकी कोशिश करने लगता है। अपने आलस्य द्वारा समय पर न किये गये कार्योंकी आलोचना होने पर वह अपने सिरका दोप दूसरो पर

जाती है । उस समय जीवात्मा एक शरीरमे अवस्थित रहते हुए भी विश्वव्यापी है, अपने और परायेका भाव उसमे रंच मात्र नहीं रहता। उस समय यदि वाकी है तो केवल एक वात है, और वह यह है कि दीर्घ कालके प्रयत्न द्वारा प्राप्त किये हुए इस अनुपम सुखको स्वय भोगते हुए भूले-भटके प्राणियोको उपदेश द्वारा सच्चा मार्ग वताना । उस समय उन उन्नत आत्माओका यही एक कर्तव्य शेप है । इस कार्यमे वे इच्छा न रहते हुए भी स्वतः प्रवृत्त होगे ।

मनोविकारों पर शासन ।

पिछले अध्यायमे हमने विकारो और वृत्तियोंके शासनकी आवश्यकता वताई है । इस अध्यायमे हम यह वतलाना चाहते है कि इनको अपने कावूमे रखनेके लिए कौन कौनसे उपाय उपयोगी होगे।

किसी समय एक चोरने न्यायाधीशके समक्ष अपनी चोरीकी सफाई देते हुए इस भॉति कहा—‘ हुजूर मैने चोरी तो अवश्य की है; परंतु सच्चा अपराधी मै नहीं हूँ । मेरे पड़ोसीने अपना सोनेका चमकदार कंठा दिखा कर मेरे मनको मोहित कर लिया और मुझे उसको चुरा लेनेके लिए लाचार किया । अत एव सच्चा अपराधी वही है और सजा उसीको होनी चाहिए ।’ अपराधीकी ये वातें सुन कर जज साहवको उसकी युक्ति पर हॅसी आ गई। उन्होने अपराधीको एकान्त वासकी सजा देकर कहा कि अव तुम्हारा मन लुभानेके लिए तुम्हारे सामने कोई मनुष्य न आवेगा ।

यदि सच पूछा जाय तो नैतिक संसारमे मनुष्य प्रति दिन इसी प्रकारकी युक्तियोका उपयोग करता रहता है । ‘ अमुक मनुष्य मेरे

प्रकारके मनोहर रूप धारण कर मनुष्योके चित्तको मोहित करनेका प्रयत्न करते है; परन्तु उन्हे अपने हृदयमे स्थान देना या न देना तुम्हारे कावूमे है। यह भी स्मरण रहे कि जिस प्रकार भूतोका भय दृढ़चित्त मनुष्योंके हृदयमें फटकने भी नहीं पाता उसी प्रकार सच्चरित्र मनुष्योंके पास आनेमें पाप-वासनाओंको भी वड़ा डर लगता है। लालच उसीके लिए है जो लालची है। निर्लोभी व्यक्तिको वह अपने फंदेमें कभी नहीं फँसा सकता। अत एव इन कुवासनाओको धिक्कारना और दोष देना निरर्थक है। मनुष्यकी दृष्टिको मोहित करनेवाले पाप-समूहकी संसारमें क्या आवश्यकता थी! भोले भाले शुद्ध-हृदय मनुष्यको ठगना और उसे चक्करमे फँसाना निदान उसकी निन्दा करना और उसे दंड-पात्र ठहराना यह तो दुष्टोका माया-पूर्ण षड्यंत्र जँचता है। वास्तवमें विचार करनेसे माछ्म होता है कि पदार्थोंकी परीक्षा करनेके लिए वहुधा भय-पूर्ण स्थलोंका उपयोग किया जाता है। सोनेकी परीक्षा करनेके लिए काली कसौटी चाहनी पडती है। इसी भॉति मनुष्यके हृदयकी परीक्षा करनेके हेतु ही पाप-वासनायें ससारमें विद्यमान हैं। देखो, जव तक तुम्हारे सामने कोई ५०० रुपयोंकी थैली चुपचाप लाकर न रख दे तब तक तुम लोभी हो अथवा निर्लोभी, इसकी परीक्षा कैसे हो सकती है; यदि पाप न होते तो संसारमें महात्मा और दुष्टो कि पहचान कैसे होती। अत एव छल, अभिमान, माया, मोह इत्यादि कुवासनाओंसे घेरे जाने पर अपने तई असमर्थ मान कर उन्हे दोपका स्थान मानना मानो उन्नतिके मार्गसे हटना है।

जव तुम्हें अपनी आत्मिक शक्तिका परिचय होगा उस समय तुम्हें संसारके सभी अनिष्ट पदार्थ इष्ट सूझने लगेगे। तब तुम्हें माछ्म होगा कि जिन पदार्थोंको तुम अपनी उन्नतिके वाधक और शत्रुके समान समझते थे

मढ देता है। यदि ऐसा करनेके बदले वह अपने अपराधको मुक्त कंठसे स्वीकार कर ले तो संदेह नहीं कि वह दुबारा वैसा कार्य न करे। हम सब जानते है कि पुलिस द्वारा पकड़े हुए कई अपराधियोको केवल यही दड दिया जाता है कि वे अपने अपराधको स्वीकार कर ले। इसका क्या अभिप्राय है? यही कि अपराधको स्वीकार कर लेने पर मनुष्य दुबारा उसे सहसा नहीं कर सकता। हमारी समझमे तो पहले अपराधके लिए पेश होनेवाले मनुष्योको जेलखाने भेज कर बे-शरम बनानेकी अपेक्षा उन्हे अपना अपराध कबूल करनेके लिए बाध्य करना और अपराधके दोषोको अपराधीके हृदय पर अंकित कर देना उत्तम दंड होगा।

कई लोगोका मत है कि मनुष्यके हृदयमे अपराधको स्वीकार न करनेकी इच्छा प्राकृतिक है। इस लिए वह किस प्रकार बुरी कही जा सकती है? इसके उत्तरमे हम कहते है कि अपराधको स्वीकार न करनेकी इच्छा प्राकृतिक नहीं है; परतु अपराधी बननेका डर प्राकृतिक है। यदि अपराध स्वीकार करने पर मनुष्यको निन्दा अथवा दंडका भय न हो तो उसको ऐसा करनेमे किसी प्रकार आनाकानी न होगी। क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि समाजने दंड-विधिको बना कर मनुष्यको झूठ बोलनेके लिए लाचार किया है। एक विचारशील मनुष्यने सच कहा है कि 'ज्यो ज्यों कानून-कायदोकी सख्या बढती जाती है त्यो ही त्यो मनुष्य और और चालाक बनते जाते है।' स्मरण रहे कि अपने अपराधको स्वीकार करना यह उन्नति-पथके ऊपर मानों कई कदम आगे बढना है। साधनोको दोप देते फिरना मूर्खता है। वास्तवमे कैदका दंड देनेवाला मॅजिस्ट्रेट नही है, तुम्हारे कुकार्य ही है। इसमे संदेह नहीं कि संसारमे पाप-समूह रूपी राक्षस नाना

लिख देने योग्य ज्ञान रखते हों, घटों उस विषय पर व्याख्यान देकर लोगोंको उसके आवेशके शमन करनेकी शिक्षा दे सकते हों, परंतु जब सच्चे क्रोधका अवसर आ-उपस्थित होता है उस समय उसे सँभाल लेना टेढ़ा काम है। इसी लिये किसी महात्माका कथन है कि केवल ज्ञानके द्वारा आत्मोन्नति असंभव है। जानना और कामको कर दिखाना ये दो बातें हैं। काम-वासनाको ही लीजिए। पुराणोंकी तिलोत्तमा द्वारा ब्रह्माजीके तपो-भ्रष्ट होनेकी बात सभीको विदित है। पाँच हजार वर्ष तक दिव्य तप करनेवाला योगी भी जिस काम-वासनाको विजय न कर सका, उसकी जलनका क्या ठिकाना है। भूतकालकी बातोंको छोड़ कर अपनी आँखोंके सामने ही देखिए। सब लोग स्वीकार करते है कि युद्ध सभ्यताकी उन्नतिके लिए बड़ा हानिकारक है, और मनुष्य-जातिको महा अनिष्टकर है। इतना जानने बूझने पर भी बड़े बड़े राज्य-विशारद लोभसे प्रेरित होकर एन मौके पर आँखें मींच समरमें प्रवृत्त हो जाते है। यदि दूसरोंकी बात पर विश्वास न करते हो तो स्वतः दिन भरके लिए भूखको साथ कर देख लो कि तुम्हारे चित्तमें कैसी भावनायें उत्पन्न होती हैं। सारांश यह है कि मनोविकारोंकी तीक्ष्णता बड़ी ही दुर्द्धर है। इसे सहन करना कायरोंका काम नहीं है। जो लोग इस विषयमें अभ्यास नहीं करते और केवल अपने ज्ञान-मदमे चूर रह कर इन्द्रियोंको दमन करनेका हौसला रखते है वे मूर्ख हैं। इस विषयको सीखनेकी शाला मनुष्यका दैनिक जीवन है। वासनाओंके आवेशोंका शमन करनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि कार्यको करनेके पहले मनुष्य कुछ देर तक ठहर जाय। कभी कभी केवल दस तक गिन्ती पढनेमें जितना समय लगता है उतनी ही देर तक सँभले रहना बड़ा लाभकारी होता है। ऐसा

वे वास्तवमे तुम्हारे मित्र और उन्नतिके सहायक है । वे रोग, जिनके आने पर तुम नाना प्रकार दुखी होकर करमते थे, आज तुम्हे अपने धैर्यके परीक्षक जान पड़ेगे; और अव तुम उनके उपस्थित हाने पर रोनेके बदले धैर्यसे काम लेओगे । उन शिक्षकोंका मत, जो इन्हे बुरा बताते है, तुम्हे ठीक न माल्रम होगा । तुम्हे जान पड़गा कि ये तो सभी तुम्हारे मित्र है, जो तुम्हे तुम्हारी उन्नतिके मार्गमे सहायता देते है । जिस समय यह भाव तुम्हारे हृदयमे उत्पन्न हो जायगा उसी समय अपने मनोविकारोको दमन करनेके लिए जिस सामर्थ्यकी आवश्यकता होती है वह तुम्हारे हृदयमे आप ही आ जायगी ।

मनोविकारों पर शासन (२) ।

पिछले पाठको पढनेसे विदित होगा कि अपने अपराधको मुक्त-कठसे स्वीकार कर लेनेकी आदत डालनेसे मनुष्यको अपना चरित्र उन्नत बनानेमे बहुत सुविधा होगी । परतु इसस केवल इतना ही समझना चाहिए कि मनुष्य मनोविकारोका शासन करनेके सच्चे रास्ते पर लग गया है । वास्तवमे काम, क्रोध, लोभ, लम्पटता इत्यादि वासनाओका दमन करनेके लिए दूसरे साधनोका प्रयोजन होगा । इन सावनोको अपनी जिम्मेदारी स्वीकार किये विना या तो मनुष्य काममे ही नहीं लाता अथवा उपयोग किये जाने पर वे इच्छित फलको प्राप्त नही कर सकते । इस अध्यायमे इन्हीं साधनोका व्यौरेबार वर्णन करेगे ।

प्रत्येक व्यक्तिका अनुभव है कि वासनाओकी तपस्या कितनी कठिन है । आप क्रोधके बुरे परिणामोके विपयमे चाहे ग्रथके ग्रंथ

नैतिक उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है । प्रत्येक धर्ममें अपने दिन भरके कार्यों पर विचार करनेके लिए सोनेके पेश्तर समय निश्चित करनेका उपदेश दिया गया है । उसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य अपने नैतिक चरित्रकी सँभाल उसी भाँति कर लिया करे जैसे कि वह अपने दैनिक आय-व्ययकी किया करता है ।

मानसिक विकारोंको दमन करनेसे नैतिक उन्नतिके सिवाय और जो जो लाभ होते है उनको विस्तार-पूर्वक लिखना असंभव है । देखो, नियमित आहार-विहार और निद्राके द्वारा स्वास्थ्यको कितना लाभ पहुँचता है । इन दिनो मनुष्य बहुधा खाद्य पदार्थोंकी महँगाईको रोया करते है । परन्तु महँगाईके कारण हमारे स्वास्थ्यको जितनी हानि नहीं पहुँची है, उतनी शायद हमारे लम्पटी होनेके द्वारा हुई है । जो मनुष्य अपने आपको या अपनी सन्तानको निरोग और बलाढ्य बनाना चाहता है उसे आवश्यक है कि वह अपनी वासनाओंको रोके । इसी भाँति आर्थिक और सामाजिक उन्नतिके लिए भी संयमकी आवश्यकता है । जो देश जितना विलासी और शराबी है वह उतना ही दुखी और दरिद्र है । जिस समाजके मनुष्य वासनाओंके दास हैं उसी समाजमें चोरी, डकैती और हत्याओंका बजार गरम रहता है ।

आजकल बातोंका जमाखर्च करनेवाले ऐसे लोक-दिखाऊ महात्माओंकी कमी नहीं है जो धर्म और नीति-शास्त्रको पृथक् बतानेका दुःसाहस करते हैं । वे कहते है कि धर्म और आचार-शास्त्रका कोई सम्बन्ध नहीं है । खानपान और रहन-सहन कैसा ही क्यो न हो, मनुष्य यदि धर्मात्मा बनना चाहे तो वह बन सकता है । ऐसे मनुष्योंकी पोच युक्तियो पर विश्वास न करना चाहिए । वे लोग ऐसा उपदेश इस कारण देते हैं कि उनने अपना ध्येय ' ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' मान

करनेसे आवेगोकी तीव्रता जाती रहती है । क्रोधी मनुष्य यदि पॉच मिनिट भी हाथ चलानेसे रोक लिया जाय तो संभव है कि अनी बिलकुल टल जाय। साथ ही चित्तकी वृत्तिको दूसरी ओर मोड़ देनेसे भी लाभ होगा । मान लीजिए कि आपको तीव्र काम-वासना सता रही है । ऐसे समयमे यदि स्त्रीका विचार छोड़ कर मनको दूसरी बातोंमे लगाओ तो पहली वासना जाती रहती है । क्रोधी मनुष्यको शात करनेके लिए उसका ध्यान दूसरी ओर खींच लेना ठीक समझा जाता है । निदान आवेगोसे रक्षा पानेका उत्तम उपाय यही है कि उनके हुक्मकी तामील कभी फौरन न की जाय और चित्तको दूसरी ओर बॉट दिया जाय ।

आवेगकी तीव्रता शात होने पर उससे बिलकुल निश्चित न हो जाओ । जिन जिन उपायोंका अवलम्बन करनेके लिए वह इच्छा तुम्हे बाध्य कर रही थी उनका विचार करो और देखो कि वे योग्य हैं या अयोग्य । और इस बातकी भी कल्पना करो कि उनसे दूसरोंको और स्वतः तुम्हे भवियष्मे क्या क्या हानियॉ होगी । वासनाओकी प्राप्तिमे क्षणिक सुख अवश्य है, परन्तु स्मरण रहे कि यही सुख तुम्हे भविष्यमे दु:खके गहरे कुएमें ढकेल देगा । मद्यपायी, वेश्यागामी अथवा कुत्सित आचार करनेवाले महापुरुप यदि कुछ दीर्घ दृष्टिसे अपना और अपनी संतानका भविष्य देखें तो सभव है कि उनकी मति पलट जाय । इस प्रकार आलोचना करनेका उत्तम फल यह होगा कि भविष्यमे उसी वासनाकी जागृति होने पर उसकी तेजी पहलेके समान न रहेगी और तुम्हारा बल भी बढेगा ।

वासनाओके अवगुणों और बुरे फलोकी आलोचना करनेके लिए यदि प्रति दिन मनुष्य कोई विशेप समय नियत कर ले तो उसकी

है। बाहरी आडम्बर और सामग्रीको देख कर लोग तो सदैव यही अनुमान करते है कि जहाँ धन, परिवार, स्वास्थ्य और नाना प्रकारकी सामग्री है वहाँ सुख अवश्य होगा, परतु बहुधा यह कल्पना मिथ्या होती है।

भक्ति, उपासना और योग आदि मार्गोंके द्वारा पारलौकिक सुखोकी प्राप्ति चाहे कुछ भी हो; परंतु इस जिन्दगीमे इनके द्वारा सभी मनुष्योकी सतुष्टि नही हो सकती। वास्तवमे कई मनुष्योको आँखे मीच कर नीदमे मग्न हो जाना अथवा बेकार होकर मंदिरमे जा बैठना स्वभावसे ही अच्छा नहीं लगता। इन क्रियाओको वे सुस्त और बेकार मनुष्योके योग्य समझते है। इनका यह विचार सर्वथा सत्य नही है। सच बात यह है कि संसारमे फॅसे हुए साधारण मनुष्योकी योग्यता उपर्युक्त मार्गोंके अवलम्बन करने योग्य नही है। ये मार्ग केवल उन्नत आत्माओको लिए उपयोगी हो सकते है। इसा लिए जन-साधारणको ये रुचिकर प्रतीत नहीं होते।

कर्तव्य-मार्ग कोई नवीन मार्ग नही है। गीतामे श्रीकृष्णके उपदेशोका जिन लोगोने ध्यान-पूर्वक मनन किया है उन्हे हमारा कहना सत्य जॅचेगा। भगवान् श्रीकृष्णने पद-पद पर इस मार्गकी उत्कृष्टता और आवश्यकताको बताया है। केवल गीताहीमे क्यो, प्रत्येक मजहबके धर्मशास्त्रोमे कर्तव्य-मार्गको पुष्ट किया है। खुले शब्दोमे उसका उल्लेख चाहे भले ही न हो; परंतु हम दावेके साथ कह सकते है कि बिना कर्तव्य-मार्गका उपदेश किये कोई धर्म जीवित ही नही रह सकता। इस लिए कि कर्तव्य मनुष्यका स्वभाव है। जिस प्रकार उष्णताके बिना अग्नि नही रहती, उसी प्रकार कर्तव्यके बिना मनुष्यका अस्तित्व नहीं रह सकता। ये सब धर्माचरण और भिन्न भिन्न क्रियाये क्या है?

रक्खा है। इन मनुष्योके बाहरी ठाट-बाटसे नजर हटा कर यदि आप इनके अन्तःकरणकी ओर देखेगे तो उसे घोर नरकके समान भीपण पावेगे। सच्चे वासनाओके दास यदि कोई है तो वे ये ही है। आचरण और धर्म कभी पृथक् नही हो सकते। जो धर्म मनुष्यके आचरणको नही सुधारता वह धर्म नहीं, और जो आचरण धर्मसे विरुद्ध है वही पाप है, ऐसा जान कर हमारा कर्तव्य है कि हम अपने नैतिक चरित्र पर तीव्र दृष्टि रक्खे।

कर्तव्य-मार्ग।

लोग भक्ति, उपासना और योगमार्ग आदिके नामोसे परिचित है इन भिन्न भिन्न रास्तोको मनुष्य अपने पारलौकिक इष्टकी प्राप्तिका जरिया समझते है। 'परलोकमे सुख प्राप्त होगा अथवा नही' इस बातका पता केवल अनुमान द्वारा ही लग सकता है। कारण यह है कि ऐसे महात्मा, जो अपने भविष्यको प्रत्यक्ष देख सके, भूतकालमें भले ही हुए हो; परतु वर्तमानमे तो नही है। तिस पर भी स्वतः देख लेना तो एक बात है और दूसरोको प्रत्यक्ष परलोक दिखा देना दूसरी बात है। वास्तवमे परलोकका सच्चा अनुमान वर्तमान जिन्दगी परसे ही हो सकता है। निदान हम अनुमान कर सकते है कि वे साधन, जो वर्तमान जिन्दगीको सुख और शाति-पूर्ण बना सकते है, सम्भवतः हमारे भविष्य जीवनको भी सुखमय बना सकेगे। परतु एक बात हमे स्मरण रखना चाहिए। वह यह है कि हमारा वर्तमान जीवन सचमुच सुखमय है अथवा नही। इसका अनुभव हमे ही हो सकता

कार्य-व्रतकी कसौटी पर जाँचनेसे विदित होगा कि यह मार्ग कितना कठिन और दुस्तर है।

कर्तव्य-मार्गका बड़ा गुण यह है कि इसके द्वारा लोक परलोक दोनोका कार्य साध सकता है। जो लोग परिश्रमी है, अपने कार्यमे लगे रहते है और जो विघ्न-बाधाओको पहचानते भी नहीं, ऐसे मनुष्य दरिद्रके घरमे जन्म लेकर भी अपने पुरुपार्थ द्वारा धन कमा कर सुखी होते हुए देख पड़ते है। आलसी और लोभी आदमियोसे कुछ भी नहीं बन पडता।

सच्चा परोपकार भी उन्ही लोगोसे बन पड़ता है जो अपने किये हुए परिश्रमका मूल्य पानेकी गरजसे उसे नही करते। देखो, यदि आम है तो उसके फल समय पाकर प्राप्त होगे ही; फिर उनके लिए अधीर होना क्या ठीक कहा जायगा। इसी भाँति समाज और देशके कल्याणका जिन लोगोने बीडा उठाया है वे सभी कर्तव्य-मार्गके उपासक है। उन्हे दूसरोकी प्रशसा और अपमान, लाभ अथवा हानि, धर्म और परमेश्वर किसीकी परवा नहीं रहती। उनका एक मात्र लक्ष्य कर्तव्य—दिन-रात कर्तव्य—हीहै। उन्हे राज्य-दंड मिले अथवा कारागार; फॉसी हो जाय अथवा सिंहासन, वे अपने कर्तव्यसे कभी च्युत नहीं होते। ऐसे कर्तव्यशील महात्माओकी आत्माओंमे एक प्रकारकी विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे कि वड़े बड़े शक्तिशाली राजा भी उनकी दृष्टिसे दृष्टि नहीं मिला सकते। अवतारोंकी वातका सच्चा मतलब ये ही असाधारण आत्माये है।

कर्तव्य-प्रेमी न होना यह व्यक्तिकी दुर्बलताका सूचक है। कर्तव्य-प्रेमी व्यक्तियोंका उत्पन्न न होना यह समाजकी दुर्वलता है। कई लोगोंका मत है कि कर्तव्य-प्रेमी सज्जनोको प्रकृति स्वय ही उत्पन्न

कर्तव्यके जुदे जुदे रूप है अथवा और कुछ । वास्तवमे जितनी क्रियाये मनुष्य करता है वे सभी कर्तव्य है। खाना, पीना, सोना, दान, भक्ति, योग और स्वाध्याय आदि सभी कर्तव्यमे शामिल है । परतु यह बात जुदी है कि कर्तव्य मार्गके वे अनुकूल है अथवा नही। हमारी क्रियाये कर्तव्य-मार्गके अनुकूल है अथवा नहीं, यह वात जाननेके लिए हमे कर्तव्य-पथका स्वरूप समझ लेना चाहिए।

मनुष्योके सब उपाय फलके लोभसे हुआ करते है । विद्यार्थी पाठ इसे लिए पढता है कि विद्या पढ लेने पर उसको आजीविका प्राप्त करनेमें कठिनाई न होगी । मास्टर इस लिए पढाता है कि महीना पूरा होने पर उसे वेतन प्राप्त होगा । योगी तपस्या इस लिए करता है कि उसके द्वारा उसे सुख मिल रहा है अथवा मिलेगा। दानी यशके लिए, महात्मा परोपकारके लिए और नीच अपने स्वार्थके लिए अपने अपने काम करते है। निदान फलकी इच्छाके द्वारा प्रेरित होकर मनुष्य भिन्न भिन्न कार्य करते है। बस यही भूल है । कर्तव्य-पथ इसी बात-को निन्दनीय बतलाता है। उसकी दृष्टिमे निष्काम कर्म ही प्रशासनीय है। फलकी इच्छासे जो जो कार्य किये जाते है वे निष्काम नहीं हो सकते। उनका अधिकसे अधिक फल इच्छाकी पूर्ति है। उनके द्वारा आत्म-बलकी जागृति नही हो सकती। आत्म-बलकी जागृति निष्काम-कर्महीसे होती है; और जो कार्यके योग्य अथवा अयोग्यका एक बार निश्चय करके फिर उसे फलकी अपेक्षा न करके करते चले जाना है, वही निष्काम-कर्म है । चाहे उस कार्यका परिणाम अच्छा हो अथवा बुरा; लोग उसे ठीक कहे अथवा नहीं इन बातोकी ओर ध्यान न देकर कार्यको अन्त तक करते रहना यही सच्चा कार्य-व्रत और कर्तव्य-पथ है। जो लोग महात्मा कहलानेका दावा करते है उनके कार्योंको

परिश्रमका महत्त्व।

हमारे देशमे परिश्रम करना मजदूरोका काम् समझा जाता है। रेलसे उतर कर अपनी गठरी हाथमे लेकर प्लेटफार्म परसे निकलना सभ्यताके विरुद्ध समझा जाता है। जो जितना कम परिश्रम करता है और जिसका शरीर जितना स्थूल है वह उतना ही इज्जतदार और वड़ा आदमी गिना जाता है। और तो क्या, वाजारमे तरकारी लेने जाना यह भी अपनी शानके खिलाफ समझा जाता है। एक ओर समाजके धनिक सेठ-साहूकार केवल तकियेके सहारे पडे रह कर तोंद फुलाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं तो दूसरी ओर शिक्षित लोगोंका ढंग और ही निराला है। अँगेरजी स्कूलमे लड़केको साल छह महीने पढा कर देख लीजिए। वर्षों परिश्रम करनेके उपरात आप स्वतः चाहे १५) रु० मासिककी नौकरी ही करने लग जायँगे और वह वेतन चाहे कुलियोंकी कमाईसे भी कम हो; परंतु अपने काम अपने हाथो करनेमें वावू साहवको घृणा होगी। शिक्षितों और धनवानोंकी तो परिश्रमकी ओर ऐसी दृष्टि है। रहे वेचारे कृषक लोग और मजदूर-पेशा, सो ये वेचारे क्या करें; अपनी श्रम-पूर्ण अवस्थासे छुटकारा पानेको ये विवश हैं, अत एव वेचारे लाचार है । वे केवल अपने भाग्यको कोसते है और अपनी अवस्थासे सदैव असतुष्ट रहते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि उनके हृदयमें आत्म-ग्लानि समा जाती है। लोग कहा करते हैं कि भारतके किसान पुरानी लकीरके फकीर हैं; और यह सच भी है। परंतु वेचारे किसान करे क्या! जव उन्हें अपना पेशा एक वोझेके समान माद्धम होता है तव वे उसमें अपना चित्त कैसे लगा सकते हैं

करती है अथवा यो कहो कि वे स्वतः पैदा होते है—प्रयत्नसे बनाये नही जा सकते। इस प्रकारका विश्वास निराशासे भरा हुआ है। जिन्हे मनुष्यकी शक्तिका पता नही है वे ही लोग ऐसा मान सकते है। हमारा मत तो यह है कि योग्य शिक्षा प्राप्त करने पर आलसी मनुष्य भी कर्तव्यशील बन सकता है। यदि ऐसा शरावी, जिसके शरीरसे मद्यकी गंध तक आने लगी हो, मद्यसे छुटकारा पाकर विवेकी और धर्मात्मा बन सकता है, तो फिर साधारण मनुष्यका कर्तव्य-प्रेमी बन जाना कौन कठिन बात है!

कर्तव्य-पथकी आवश्यकता और उसके लाभोके विषयमे उपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। हम देख चुके है कि कर्तव्य-मार्ग लोक और परलोक दोनोमे सुखका देनेवाला मनुष्यका धर्म है। भक्तिमार्ग, योग-मार्ग आदि नाना पथोसे इसका महत्त्व किसी अशमे कम नही है। वर्तमान युगमे यदि किसी धर्मको फैलानेकी आवश्यकता है तो इसीकी। इस लिए हमारा कर्तव्य है कि हम स्वतः इस पथके अनुगामी बने और दूसरोको भी इसकी शिक्षा दे। परतु स्मरण रहे कि कर्तव्य-देवता तब तक सतुष्ट नही हो सकते जब तक कि हम आलस्यसे मित्रता किये है। उन्हे मनानेके लिए हमे खान-पान, आराम और आवश्यकता पड़ने पर जीवन तक समर्पण करना पड़ेगा। एक बार उनकी प्रसन्नता होने पर इच्छित वरदानकी प्राप्ति होनेमे कुछ भी कठिनाई न होगी।

कता। सम्मिलित उद्योगके लिए कल-कारखानोंकी आवश्यकता होती ; परंतु बिना पूँजीके ये किस प्रकार चलाये जा सकते है। बिना कल-कारखानोके चलाये हमारी गरीबी दूर होना असंभव है। स्मरण रहे के वर्तमान युगमे जो देश केवल कच्चा माल तैयार करता है वह सदैव दरिद्र रहेगा। देशमे दरिद्रता अवश्य है, परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि उसमे बिलकुल ही धन नहीं है। धन तो है, परतु धनिक लोग उसे कल-कारखानोंमें लगाना उचित नहीं समझते। इसके दो कारण है। एक तो वे बेचारे सुशिक्षित रहते हैं, दूसरे उन्हे परिश्रमसे घृणा है। मान लो कि एक मनुष्य सुशिक्षित और महनती दोनों है। उसने अपने परिश्रम और विचारसे एक नये यंत्रका आविष्कार किया। अब बेचारेको उसके तैयार करनेके लिए धनका प्रयोजन है। यदि कोई माईका लाल धनवान उसे पूँजी दे दे तब तो उसका परिश्रम सार्थक हो सकता है, अन्यथा नहीं। यदि वही मनुष्य स्वतः धनिक होता तो बतलाइए उसे कितना सुभीता होता। जापान और अमेरिकासे लौटे हुए युवकोंकी इस देशमें पूँजीके अभावके कारण बड़ी दुर्दशा होती है। लोग कहते हैं कि धन और विद्याका संयोग मानो सोनेमें सुगंधके सदृश है। परंतु हमारी रायमें धन, विद्या और परिश्रम इन तीनों बातोंके बिना मिले काम नहीं चल सकता।

अँगरेजी शिक्षाको प्राप्त करके परिश्रमसे घृणा करने लगना यह हमने कहाँसे सीखा है? यह तो हम नहीं कह सकते कि अँगरेजोंकी देखा देखी हमने यह अवगुण सीखा हो; क्योंकि यह आँखो देखी बात है कि दो हजार मासिक पानेवाले उच्च अँगरेज कर्मचारी अपने बगीचेको स्वतः खोदा करते हैं। अपने कामको अपने हाथों करना यह तो उन लोगोमे बड़ा गुण समझा जाता है। तब फिर क्या सबब हो सकता

अर्थशास्त्रका सिद्धान्त है कि रुपयेको कमानेका मूल साधन परिश्रम है। बिना परिश्रम किये धन उपार्जन करना असंभव है; परंतु यह बात स्मरण रहे कि परिश्रम दो प्रकारका है। एक शारीरिक और दूसरा मानसिक। केवल शारिरिक परिश्रमका मूल्य सच पूछो तो कुछ भी नहीं होता। दिन भरके अधिकसे अधिक छह आने अथवा आठ आने समझ लीजिए। इसी भाँति केवल मानसिक परिश्रमकी भी कुछ अधिक कदर नही होती। सब लोगोको मालूम है कि तत्त्ववेत्ता लोग सबसे अधिक मानसिक श्रम करते है, उनका सारा समय विचारहीमे व्यतीत होता है; परतु लोग उनकी कितनी कदर करते है! उन बेचारोको अपनी रोटियोके लिए सदैव दूसरोका मुँह ताकना पड़ता है। सारांश यह है कि केवल शारीरिक श्रमका कुछ भी मूल्य नही होता, और केवल मानसिक श्रमका भी बहुत मूल्य नहीं होता; परंतु दोनोंका सम्मिलन होनेसे उनका मूल्य निःसन्देह बहुत ही ज्यादा हो जाता है। विचार करने और कार्य करनेकी शक्ति जब ये दोनो मिल जाती है तब उनके द्वारा बड़े बड़े कार्य सम्पादित किये जा सकते है; परंतु हमारे अभागे देशमे ये दोनो पृथक् पृथक् हैं। जो लोग शारीरिक परिश्रम करते हैं वे बेचारे बिलकुल अपढ़ है, उनका मन काम ही नहीं कर सकता। और जो लोग अपने दिमागसे कुछ सोच-विचार कर सकते है वे ऊँगली तक हिलानेको पाप समझते है। यही कारण है कि हमारे किसान पुरानी लकारके फकीर है और हमारे शिक्षित लोग निरे पुस्तकोके पंडित है। इसी लिए विज्ञानके आचार्य होकर भी हम उन शक्तियोका कुछ भी उपयोग नही कर सकते। आर्थिक अवस्थाका सुधार ऐसी हालतमे होना असंभव है।

आर्थिक दशाको सुधारनेके लिए पूँजीकी दरकार है। बिना पूँजीके परिश्रम कितना ही ऊँचे दरजेका क्यो न हो वह कुछ भी नहीं कर

परिश्रम करनेके कारण उनमे स्वावलम्बन, आत्म-विश्वास, शक्ति और स्फूर्ति है; और इसके विरुद्ध हम लोग आत्म-ग्लानि, रोग और सुस्तीसे पीड़ित है ।

आर्थिक दशाको सुधारनेमे परिश्रमका जितना प्रयोजन है शायद उससे बढ कर अपनी तन्दुरुस्तीको कायम रखनेके लिए उसकी आवश्यकता है । शरीरमे चर्बी बढ जाना, वीर्यकी कमजोरी और सुस्तीका होना ये सब रोग परिश्रम न करनेके ही फल है । शारीरिक व्यायाम, टहलना, दौड़ना इत्यादि भिन्न भिन्न कसरते केवल परिश्रम करनेके ही जरिये हैं । परंतु यह स्मरण रहे कि उद्देश्य यह है कि शरीर सुस्त न होने पावे और परिश्रमकी आदत बनी रहे । परंतु इतना होने पर भी दुःखका विषय है कि हम लोग नहीं चेतते । अपनी अवनतिके मूल कारणोको ढूँढ निकालनेके बदले इधर उधर दौड़ते फिरना शक्तिको व्यर्थ नष्ट करना है । कितना उत्तम हो कि यदि स्कूलोंमे लड़कोसे घंटे दो घंटे शारीरिक मशक्कत लिये जाने योग्य विषय पढाये जायँ; परन्तु हमारा ध्यान इस ओर जाता ही नहीं । स्मरण रहे कि जब तक हम परिश्रम करनेको बुरा समझते रहेगे और उसको करनेकी आदत न डालेगे तब तक हमारा कल्याण न होगा ।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता ।

वर्तमान समयमें स्वतंत्रताकी चर्चा चारो ओर फैल रही है । प्रजा राजाके अधिकारसे, व्यक्ति समाजके शासनसे और बालक माता-पिताओंके दण्डसे छुटकारा प्राप्त करनेकी चिन्तामे मग्न है । जिधर देखो

है कि हमारे अँगरेजी शिक्षित युवा मेहनतको बुरी दृष्टिसे देखते हैं ? विचार करनेसे विदित होता है कि बोर्डिंग-हाउसोके सिर पर यह सारा अनर्थ है। अपने घर-बारसे पृथक् होकर विद्यार्थी लोग ज्यो ही बोर्डिंगमे रहने लगते है त्यो ही वे विलासी और आलसी हो जाते है। महीनो बाजारके दर्शन न करनेके कारण उन्हे बाजार जानेमें अटपटासा लगता है। सदैव नौकरो द्वारा पानी पिलाये जानेके कारण उनके हाथ-पाँव टूट जाते है। इसी कारण वे आलसी और सुस्त हो जाते है। बोर्डिंग-हाउसोकी प्रथा इस लिए अनिष्टकर है कि जिस परिस्थितिमें बालकोको अपना भविष्य-जीवन बिताना पड़ेगा उससे वह भिन्न है।

परिश्रमके विषयमें जैसी हमारी दृष्टि है यूरोप, अमेरिकामें उससे बिलकुल उलटी बात है। वहॉ परिश्रम करना एक गुण समझा जाता है। बी० ए० और एम० ए० के लोगोको खेतमे खड़े होकर हल हाँकना तो एक साधारण बात है। सुन कर लोगोको आश्चर्य होगा कि कई लाख रुपयोकी प्रति दिन आमदनी होते हुए भी मिस्टर कार्नेगी अपने खेत खुद जाता करते थे। मजदूरी-पेशेको वे लोग हमारे समान घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखते; परंतु उसकी इज्जत करते है। इसी लिए वहॉ मजदूरीकी रोजाना आमदनी ५) रुपया है; और हमारे यहॉ मुश्किलसे चार आना। अपना काम अपने हाथो कर लेनेके कारण उन्हें हमारी नाई दूसरोका मुँह नहीं ताकना पड़ता। शरीरसे परिश्रम करनेके कारण हमारे समान वे लोग चालीस वर्षकी उमरहीमें बूढे नहीं हो जाते। परिश्रमसे घृणा होनेके कारण जिस प्रकार हमे १५) रुपयेकी नौकरीके लिए दूसरोका मुँह ताकना पड़ता है वैसा उन्हें स्वप्नमे भी नहीं करना पड़ता।

ऐसा नही है। प्राकृतिक वासनाओमेसे कई ऐसी है जिन्हें कायम रखने और उत्तेजित करनेकी आवश्यकता है, कई ऐसी है जिन्हे लगाम लगानेकी आवश्यकता है और कई ऐसी भी है जो बिलकुल उखाड़ देने योग्य है। मनुष्यमें सच बोलने, दूसरोसे झगड़ने और स्वार्थ सिद्ध करनेकी इच्छाये जन्मसे ही पैदा होती है। इनमेसे पहलीको उत्तेजना देनेकी आवश्यकता है, और बाकी दोंको जितनी बने उतनी कम करना ही लाभकारी है। स्वतंत्राके पक्षपातियोंको रूढ़ि और बंधनोंके नामसे इतनी घृणा है कि वे ऑखें मींच कर आवश्यक और अनावश्यक सभीको साफ किया चाहते हैं। ऊॅच-नीचका भाव, करने योग्य या न करने योग्य विचार, धर्म अधर्मका विवेक इत्यादि सभी बातें इनकी समझमे निकम्मी और अन्याय-पूर्ण है। जिस प्रकार समाज-बधन ढीला कर व्यक्तिगत स्वेच्छाचारकी मात्राको ये लोग बढ़ाना चाहते हैं उसी प्रकार नैतिक आचरणको बाह्याडम्बर समझ उसके बदले स्वेच्छाचारको फैलानेका उनका अभिप्राय है। परंतु इस प्रकारका विश्वास समाज, धर्म और देश सभीके लिए हानिकारक है। प्रत्यक्ष देख लो कि समाज-बधन ढीला हो जानेसे मनुष्य किस प्रकार मनमाना अत्याचार कर रहे है। निरंकुश हाथीकी नाई जिस तिस प्रकार मतवाले हो कर फिर रहे है। धर्मको ढोगोका समुदाय मान कर लोगोंने अपना नैतिक आचरण कितना हीन बना डाला है। स्वतत्रताका यह अर्थ तो वास्तवमे अनर्थ है। जिस उपायसे कल्याणके बदले अकल्याण हो वह कैसे योग्य समझा जा सकता है।

स्वतंत्रताकी व्याख्या करते समय हमे कई बातोका स्मरण रखना चाहिए। उनमें पहली तो यह है कि जैसे मनुष्य हम हैं उसी प्रकार शक्ति और अधिकार रखनेवाले और भी अगणित मनुष्य

उधर इसीकी धूम है, अधिकारका आसन मानो डोलने लगा है। हवा इसी प्रकारकी बह रही है कि जीवनके सभी क्षेत्रोंमें एक प्रकारका उत्पात सा मच गया है। यह बात सभीको विदित है कि इस प्रकारके अध-बल बड़े शक्तिशाली होते है। उनके द्वारा या तो भलाई हो जाती है अथवा पूरा सत्यानाश। अत एव हमारा कर्तव्य है कि इस प्रकारकी हवाके झोकोमें पड़नेके पहले हम उसकी दिशाका भी अनुमान कर ले। ऐसा न हो कि पूर्वकी तैयारी करके हमे पश्चिम पहुँचना पड़े।

लोग बहुधा प्रकृतिकी दुहाई दे-दे कर अपनी इच्छानुकूल प्रवृत्ति-योको पुष्ट करने लगते है। नेचर-पडितोके ग्रथोका एकाध पत्र पढ़ कर साधारण बुद्धिवाले मनुष्य यदि इस प्रकार विचलित हो जायँ तो कौनसा आश्चर्य है! परंतु विचार-पूर्वक देखनेसे विदित होगा कि संसारमें सर्वथा सत्य सरीखी कोई बात नहीं है, आशिक सत्य ही पाया जाता है। ऐसी कोई बात नहीं जो सर्वथा सत्य हो। प्रकृतिके उपासकोने समाजके रूढि और बंधनोकी निन्दा इस लिए की है कि वे अपनी सीमाके बाहर होकर व्यक्तिके ऊपर मर्यादासे अधिक अधि-कार प्राप्त कर लेते है। इन तत्त्ववेत्ताओंका यह मत नहीं है कि समाज-बधन बिलकुल त्याज्य ही हो। इसी भॉति प्राकृतिक इच्छाओ और वासनाओकी पुष्टि करनेसे इन लोगोका यह अभिप्राय है कि उनका अधिकाश भाग, जिसको लोग निन्दनीय समझते है, वास्तवमे वैसा नही है। क्योकि यदि प्राकृतिक दशा ही सर्वाङ्ग सुन्दर हो और उसके परे सभी बाते निस्सार हो तो फिर वस्त्रोसे शरीरको आच्छादन करना, घरो और शहरोमे रहना इत्यादि सभी बाते अपराध ठहरें, और सभ्यताको मूलसे ही उखाड़ कर समुद्रमें डुबो देना पड़े; परन्तु

तीक्ष्ण हैं। स्वार्थ जब मनुष्यको सताता है और उसके पास सत्ता होती है तो वह मदाध होकर अहंकारमें चूर हो जाता है। उसे अपनी शक्तिका दुरुपयोग करना सूझता है और वह दूसरों पर अत्याचार करने लगता है। अपने अधिकारोंको कायम रखनेके लिए उस समय मनुष्य न्याय, अन्याय सभीसे काम लेना चाहता है। परंतु ये ही अत्याचार अपने रोगके उपाय हो जाते है। उसके अत्याचारोंकी मात्रा इतनी बढती जाती है कि दूसरोंको लाचार होकर उसे दमन करना पड़ता है। वह मनुष्य, जो घड़ीभर पहले शक्तिके मदमें मतवाला होकर दूसरोंको चिऊँटियोकी नाई समझता था, अपने ही हाथो अपना सत्यानाश करके धूलमें लोटने लगता है। स्वयं ब्रह्माजी भी फिर उसकी रक्षा नहीं कर सकते ! धन, शक्ति, अथवा राज्यके मदसे मत्त होकर दूसरों पर अत्याचार करना साधारण बात है। यदि इसको एक प्रकारसे मनुष्य-जातिका स्वाभाविक धर्म कहें तो अत्युक्ति न होगी । यदि ऐसा न होता तो संसारमें सत्ता स्थानांतर कैसे होती ! इस लिए जो मनुष्य शक्तिका बहुत दिनों तक उपभोग करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे अत्याचारसे बाज आवें। अन्यथा उनका सुख केवल क्षणस्थायी होगा। मनुष्य जिस प्रकार अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके लिए मरे मिटते है उन्हें दूसरोंके हक्कोंका भी विचार करना चाहिए। केवल स्वार्थके वशीभूत होनेसे मनुष्य अपनी स्वतंत्रताका सच्चा आनंद कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

संसारमें मौजूद हैं । ‘ समान अधिकार ’ इन शब्दोको भूल जानेसे स्वतंत्रता शब्दका अर्थ ठीक नहीं जम सकता । जितने अधिकार प्रकृतिने एक व्यक्तिको दे रक्खे है उतने ही दूसरेको । ये अधिकार एक दूसरेसे टक्कर न खावे, व्यक्ति व्यक्तिका आपसमे संघर्पण न हो, इस प्रकारकी मर्यादाको बाँध देना ही सच्ची स्वतंत्रता है । इसके विपरीत यदि प्रत्येक मनुष्य दूसरोंकी परवा न करके केवल अपने ही स्वार्थको देखे, अपने ही अधिकारोकी पूर्तिका प्रयत्न करे तो फल यह होगा कि मनुष्य-जातिमे एक प्रकारका अनन्त संग्राम होता रहेगा कि जिसके कारण कोई सफल-मनोरथ न हो सकेगा । निदान उपर्युक्त मर्यादित बंधनोंका होना व्यक्तिकी भलाईके लिए आवश्यक है । इन्हीं बंधनोका नाम समाज-बंधन है । इनसे घृणा करना मानो नियमित शासनके बदले अराजकता फैलाना है । व्यक्तिगत स्वतंत्रताका सच्चा अर्थ सामाजिक बंधनोंकी अनुपस्थितिमें सिद्ध नहीं हो सकता । सिंहका सच्चा पराक्रम देखनेके लिए जंगल ही योग्य स्थल है । अपने सहवासियोंको नुकसान पहुँचाये बिना, उनके प्राकृतिक अधिकारोमें बाधा डाले बिना मनुष्य अपनी स्वतंत्रताका उपभोग करनेका अधिकारी है । जहाँ अपने हक्क दूसरोके हक्कोसे भिड़ जाते है ऐसे स्थलो पर स्वार्थ-त्याग करना ही उपयोगी है । ऐसा नहीं कि न्याय-पूर्ण मामलेमें भी मनुष्य दूसरोंके अधिकारोका विचार करके अपने स्वत्वोको छोड़ दे । नहीं, ऐसा करनेसे तो एक दिन भी जीना मुश्किल हो जायगा । परतु समाजने जिन नियमोकी रचना कर दी है और जो मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अनधिकार आघात नही करते उनका पालन करना समाज और व्यक्ति दोनोको उपयोगी होगा ।

स्वार्थ, अहकार और अत्याचार ये तीनो बातें कई अंशोमे एक ही है । इनमे भेद केवल इतना ही है कि ये एक दूसरेसे ज्यादा ज्यादा

दर्ज कराया और पाठकने उसको पाठ प्रारम्भ कराया कि उसकी शिक्षाका श्रीगणेश हुआ।

शिक्षित लोगोंके मतसे वालककी शिक्षा जिस समय वह माताके पेटसे निकलता है उस समयसे शुरू हो जाती है। जन्मघुटीके साथ हीं साथ दाई वालकको वहुत कुछ सिखा देती है। दुधमुँहा वालक अपने माता-पिता, भाई-वहन और कुटुम्बियोंसे केवल वोली ही नहीं सीखता; परंतु उसकी विचार-शक्तिका ढॉचा भी वहुधा वे ही लोग वाँध देते हैं। सामाजिक रूढियो और वोल-चाल और व्यवहारके नियमोंकी शिक्षाका प्रारम्भ भी इसी समय हो जाता है। जिस समय वालक पाठशालाको जाने लगता है, उस समय सच पूछो तो वह वहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर चुकता है। संतति-शास्त्रके जाननेवाले वैज्ञानिक वालककी शिक्षाका समय माताके गर्भमे आनेके साथ ही वताते हैं। इसी लिए गर्भस्थ शिशुकी शिक्षा माताके खान-पान, रहन-सहन और विचारो पर अवलम्वित रहती है। विद्वानोका मत है कि 'गर्भिणी माताकी योग्य खवरदारी रखनेसे सतान इच्छित स्वभावकी वनाई जा सकती है।' इसमें संदेह नहीं कि वैज्ञानिकोकी यह राय आयुर्वेदसे विलकुल मिलती है। माताका सतानके ऊपर जितना असर होता है, उतना शायद जन्म-पर्यंत मिलनेवाली उसकी समग्र शिक्षाका भी नहीं हो सकता। माताओकी अशिक्षा और उनके क्षुद्र विचारोंके कारण सन्तानका अधःपतन होता जाता है।

प्रकृति और स्वभावमे अन्तर है। प्रकृति वालककी जन्म-दत्त सम्पत्ति है, और स्वभाव उसकी शिक्षाका फल है। प्रकृतिके ऊपर उसका विशेप अधिकार नहीं, और स्वभाव उसीकी वनाई वस्तु है। स्वभाव आदतोंका समूह है, इस लिए वह इच्छानुसार वदला जा सकता

स्वभाव।
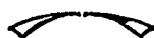
माताके पेटसे निकलते ही वालक अपने साथ कई विशेपताओंको लेकर आता है। इन्हीं सब खासियतोंका नाम उस बालककी प्रकृति है। देखा जाता है कि कई मनुष्योको थोड़ा ही कारण प्राप्त होने पर शीघ्र क्रोध आ जाता है, किसीका शरीर प्रकृतिसे ही नाज़ुक होता है और कोई मूढ-बुद्धि पाया जाता है। कई मनुष्य जन्मसे ही कपटी और कलह-प्रिय होते है और कई उदार-चरित्र और बुद्धिमान होते हैं। मनुष्यको इन प्रकृति-दत्त विशेपताओंके कारण दार्शनिक लोग अपने अपने मतानुसार भिन्न भिन्न वताते हैं। कई लोग इन्हे पूर्वकृत कार्योंके फल-स्वरूप वताते हैं; और कई जाति और कुल-सम्बधी विशेपताओं और वाह्य वस्तुओका असर मानते है। असली कारण कुछ भी हो, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि भिन्न भिन्न मनुष्यकी प्रकृतिमे कोई-न-कोई अन्तर अवश्य होता है। जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्यके मुखकी आकृति और शरीरका गठन विलक्षण होता है और दूसरोसे नहीं मिलता उसी प्रकार दो मनुष्योंकी प्रकृति सब अंशोमे एकसी पाई जाना कठिन है। साराश यह है कि वालक माताके पेटसे निकलते ही अपने साथ इस जीवनके सारे व्यापारोंके योग्य भूत पूँजीको साथ लेकर आता है। वे सारी शक्तियॉ, जिनकी उसको संसारमे आवश्यकता होगी, उसकी आत्मा और शरीरमे विद्यमान रहती है।

बालककी शिक्षाका प्रारम्भ किस समयसे होता है, इस विषयमें साधारण लोग समझते हैं कि ज्यो ही बालकका नाम पाठशालामे

स्वभाव और चरित्रका घनिष्ट सम्बंध है। मनुष्यका चरित्र उसके स्वभाव पर अवलम्बित है। जिस वस्तुको गति-दशामे हम चरित्र कहते है वही स्थिर दशामें स्वभाव कहाता है। अत एव चरित्रकी उन्नति करना जिन मनुष्योको अभीष्ट है, उन्हे चाहिए कि वे स्वभावके बनाने अथवा उसको वदलनेके साधन क्या क्या है उन्हे जान लें। विचार और कार्योंका चरित्रके ऊपर जो असर पड़ता है वह सवसे पहले आदतोंके ऊपर पड़ता है, फिर स्वभावके ऊपर और तदनन्तर चरित्रके ऊपर पड़ता है। जिन कामोको मनुष्य नैमित्तिक रूपसे प्रति दिन करता है वे ही उसके स्वभावको बनाते है और उन्हींका उसके चरित्र पर असर पड़ता है। प्रसंग-वश यदि कभी कोई अच्छा अथवा वुरा कार्य कर लिया जाय तो अधिक लाभ अथवा हानिका भय नहीं हो सकता; परतु उसी कार्यको दुहराते रहनेसे कुछ समयमे उसका वल इतना बढ़ जाता है कि वह मनुष्यको अपना गुलाम बना लेता है। चरित्रोन्नतिका मूलमंत्र यही है कि मनुष्य अपनी आदतोका सस्कार करता रहे। जहाँ तक बन सके बचपनसे ही अच्छी आदतें डालनेका प्रयत्न करना चाहिए। बुरी आदतोंके एक बार पड़ जाने पर फिर उन्हें छोड़ना कठिन हो जाता है। इसी लिए मनुष्यको चाहिए कि वह इनके चंगुलमे न फँसे।

आदतोंके प्रारम्भकी ओर दृष्टि डालनेसे विदित होता है कि किसी कार्यको करनेके समय शरीरका शक्ति-सचारी स्नायु-जाल उत्तेजित होकर मस्तिष्कके भिन्न भिन्न भागोंमे धक्के पहुँचा कर जिन अँगोसे काम लेता है उनकी ओर शक्तिको पहुँचाता है। बार वार एक कार्यको दुहराने और शरीरके अवयव-विशेषको हिलानेसे मस्तिष्कके एक विशेष भागमे एक प्रकारके शक्ति-सचारी मार्ग बन जाते है।

है; किन्तु प्रकृतिको बदलना असम्भव है। लोग बहुधा प्रकृति और स्वभावके भेदको नहीं समझते। कई आदतोको, जो बहुधा उन्हींके दैनिक अभ्यासके फल-स्वरूप है, वे प्रकृतिका स्वरूप मान बैठते है। फल यह होता है कि उनको बदलनेका वे कुछ भी उपाय नहीं करते। उपाय करें क्यो ? उनका पलटना तो वे असंभव समझते है। इतना ही नही, इन आदतोके बुरे परिणामोको देखते हुए भी वे उनको और और उत्तेजित करते जाते है। एक मित्रको कुछ समय पहले मैने यह कहते सुना था कि 'उनका शरीर प्रकृतिसे ही नाजुक है।' कारण यह था कि वे व्यायाम कभी न करते थे। उन्होंने शरीरको पुष्ट बनानेके जितने उपाय वैद्यराजजीने उन्हे बताये थे, वे सब अवश्य कर छोड़े थे। इसी लिए उन्हें विश्वास हो गया था कि वे जन्मसे ही रोग-ग्रस्त है। बहुत वाद-विवादके अनन्तर उन्होने शारीरिक परिश्रम करना स्वीकार कर लिया और फिर वर्ष भरके बाद ही उनका शरीर हट्टा कट्टा हो गया। निदान यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रकृतिका क्षेत्र उतना विस्तृत नहीं है जितना हम उसे समझते हैं। प्रत्येक सम्भव उपायका अवलम्बन करते हुए भी यदि किसी टेवको बदलनेमे सफलता न हो तब समझना चाहिए कि वह प्रकृतिके अनुकूल है। दृढता, प्रतिज्ञा और लगातार श्रम करने पर यदि जंगलका सिंह भी वश किया जा सकता है तो अपनी टेवोका बदलना कौनसी कठिन बात है।

ऊपर कहा जा चुका है कि स्वभाव आदतोके समुदायका नाम है। यदि मनुष्यकी आदतें अच्छी है, यदि वह मीठे वचन बोलता है, उसे अपने मनोविकारो पर अधिकार प्राप्त है और वह अपना व्यवहार भली भाँति चलाता है, तो उस मनुष्यका स्वभाव अच्छा है।

आदतोंको हम तीन भागोंमें बॉट सकते है । १ मानसिक, २ शारीरिक और ३ नैतिक । यह विभाग कार्य-क्षेत्रके अनुकूल किया गया है । विचारोंको उन्नत करते रहनेके अर्थ अच्छी मानसिक आद-तोंकी आवश्यकता है । लोग समझते है कि आदतोके फल केवल कार्य-स्वरूप ही होते है, विचारोंका आदतोंके साथ कोई सम्बध नहीं है । यह उनका भ्रम है । मनुष्यकी आदतों पर उसके विचारोका बड़ा भारी असर पडता है । निरंतर भावना करते रहनेसे बड़े बड़े कार्य सिद्ध हो जाते हैं । अत एव जिस भाँति शरीरको स्वस्थ रख-नेके लिए आहार-विहार-सम्बंधी योग्य आदतोंका डालना आवश्यक है उसी प्रकार नैतिक आचरण और मानसिक उद्योगकी उन्नतिके लिए अनुकूल आदतें डालनी चाहिए ।

स्वभाव एक ऐसी वस्तु है जो हमेशा बदलती रहती है । इसके फेरफार इतने सूक्ष्म होते है कि मनुष्य अपने आप उन्हें जान नही सकता । अत एव इस विपयमें मनुष्यको सावधान होकर देखते रहना चाहिए कि उसकी गति किस ओर हो रही है । यदि उन्नति न हो तो अवनति अवश्य होगी । यह मानना भूल है कि स्वभाव, आदतें अथवा चरित्र एक सा बना रहता है ।

कई मनुष्योंको यह कहते सुना है कि स्वभावकी कोई दवा नहीं है । स्वभाव शब्दसे मतलब यदि प्रकृति-दत्त अभिरुचियोंसे हो तो इनका कहना सत्य हो सकता है । परंतु जिन बातोंको मनुष्यने अपनी शिक्षा और अभ्यासके द्वारा प्राप्त किया है उनके विपयमें ऐसा मानना भूल है । हम कहते हैं कि प्रत्येक दशा और अवस्थामे मनुष्य नवीन आदतोंको डाल सकता है और पुरानी आदतोको छोड़ सकता है । अपनी चरित्रकी उन्नति करना उसकी शक्तिके भीतर है । यदि

हम जानते है कि आदत हो जाने पर किसी कार्यके करनेमें फिर दिक्कत नहीं होती, उलटी हर बार सुविधा होती जाती है। इसका कारण यह है कि मस्तिष्क-मार्गसे शक्तिका सञ्चार होनेमे विलम्ब नहीं लगता; और मनको मार्ग-प्रदर्शकका कष्ट नहीं उठाना पड़ता है, अत एव कार्य सुगमतासे हो जाता है। साराश यह है कि आदतोके पड़नेका जड आधार मस्तिष्कका मेदा है। जितनी सरलतासे इसमे मार्ग बन सकेगा उतनी सरलतासे आदते पड़ेंगी। निदान इन मार्गोंके बनानेमे कार्यको बार बार दुहरानेके साथ ही साथ मेदेकी कोमलता भी सहायता पहुँचाती है। स्मरण रहे कि उमर बढनेके साथ ही साथ मस्तिष्कका मेदा कठोर होता जाता है। यही कारण है कि लड़कपनमे जो आदते आसानीसे पड़ सकती है, युवावस्थामें उनको बनाना कठिन होगा और बुढापेमे और भी कठिन होगा। इसी सिद्धातको लेकर बालकोकी शिक्षाका काल इतना महत्त्व-पूर्ण माना जाता है।

आदतोको डालनेके लिए मुख्यतया तीन बातोकी आवश्यकता है। १ नियमित रूपसे दुहराना, २ दृढ-प्रतिज्ञा और ३ बाधाओकी अवहेलना। प्रारम्भमे शरीर और मनको इच्छित दशामे मोड़ना बडा कष्टकर होता है। इसके सिवाय और बहुतसी बाधाये आकर उपस्थित होती है। इन सबको जीतनेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञाकी आवश्यकता है। उपर्युक्त तीनो साधनोको ज्यो ज्यो प्रौढ़ बनाते जाओगे त्यो त्यो उतनी ही सरलतासे आदते बनती जायँगी। मानस-शास्त्रके विद्वानोने परीक्षा-पूर्वक सिद्ध किया है कि साधनोको दुगना बढानेसे कठिनाइयाँ चतुर्थांश रह जाती है। देखा गया है कि कई मनुष्योने अपने अध्यवसाय और प्रतिज्ञाके कारण तीस सालकी उमरमें वर्णोंका पाठ प्रारम्भ करके थोड़े ही समयमे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली है।

विवेक है। प्रत्येक व्यक्ति 'विवेक' का कुछ-न-कुछ अर्थ समझता ही है। किसी मनुष्यको कार्य करते देख लोग एकदम कह देते हैं कि 'वह विवेकी है अथवा नहीं।' परंतु यदि 'विवेक' शब्दका अर्थ उनसे पूछा जाय तो वे नहीं बता सकते। नीतिशास्त्रके शब्दोहीकी यह बात नहीं है, प्रायः और और शब्दोंका स्पष्ट अर्थ भी विरले ही मनुष्य समझते हैं। यही कारण है कि लोग शब्दाडम्बरमें फँसे रह कर वस्तुके यथार्थ स्वरूपको नहीं समझने पाते और वाक्य-विन्यासको ही पंडिताई समझते हैं। यदि प्रत्येक मनुष्य प्रति दिन एक ही शब्दके अर्थ पर मनन करे तो उसका ज्ञान बहुत बढ सकता है।

'विवेक' शब्दके अर्थ पर विचार करनेसे विदित होता है कि भूतकालके अनुभव और शिक्षाका वर्तमानमें उपयोग करना ही विवेक है। एक वार जुआ खेल कर उसमें हानि उठाने पर दूसरी वार जुआ खेलनेकी इच्छाको रोक लेनेवाला मनुष्य विवेकी है। परंतु यदि उसमे पहली वार जीत होकर आनन्द जान पड़े और मनुष्य उसे दुबारा खेले तो बतलाइए वह विवेकी है अथवा नहीं? जहाँ तक उस व्यक्तिका भूत-कालका अनुभव देखा जाय तो वह निःसदेह विवेक-पूर्वक कार्य कर रहा है। परंतु स्मरण रहे कि कई विषयोंमें मनुष्यको अपने अनुभव पर भी भरोसा न करना चाहिए। इन विषयोंमें समाज और जातिके अनुभवसे उसको लाभ उठाना आवश्यक है। प्रकृति अपना पाठ स्वतः सिखावेगी, इस प्रकार माननेवाले शिक्षा-विज्ञानियोंको ठीक ऐसे समय अपने सिद्धान्तकी पोचता मालूम हो जाती है। इन लोगोंका मत है कि संखिया खा लेनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है, यह बात बालकको बतानेकी आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक बात उसे अपने निजके अनुभव द्वारा ही सीखनी चाहिए। इसमे संदेह नहीं कि अपने

ऐसा न होता तो बुढापेमें गृहस्थीको छोड़ वानप्रस्थ ग्रहण करना असंभव होता। स्मरण रहे कि प्रत्येक आदतके पड़ने न पड़नेका समय उसी भाँति नियत है, जैसा कि भिन्न भिन्न फसलोंका। यदि उतने समयमे वह आदत न डाली जाय तो फिर उसमें अभ्यस्त होना सदैवके लिए दुस्तर हो जायगा। गान-विद्या अथवा व्याख्यान देनेकी आदत जिन्होने विद्यार्थी-जीवनमे नहीं सीखी, वे फिर जन्म भर उसके लिए पछताते रहते हैं। अत एव बुद्धिमान् मनुष्योको प्रत्येक समयकी उपयोगिताका विचार बड़े गौरवसे करना चाहिए।

पौराणिक पुरुपो और इतिहासके वीरोके चरित्रोको पढ़नेसे एक बात स्पष्ट रूपसे विदित होती है। वह यह है कि मानव-जीवनकी सफलताके लिए आत्म-विश्वासकी सबसे पहली आवश्यकता है। जिन लोगोको यह शंका रहती है कि अमुक काम करना उनके लिए असंभव है अथवा उनकी शक्तिके परे है, उन मनुष्यों द्वारा वह काम कभी नहीं हो सकता। अत एव यह मानना कि तम्बाकू पीनेकी बुरी आदतको छोड़ना अथवा प्रातःकाल उठनेकी आदतको सीखना बुढापेमें असंभव है, निस्संदेह दुर्बलताका सूचक और उसको पैदा करनेवाला है। दुर्दमनीय उत्साह और दुःखसे प्रेम सीखना यही चरित्रोन्नतिका मूलमंत्र है।

विवेक।

प्रत्येक भाषामे कई शब्द ऐसे होते है कि उनका थोड़ा बहुत मतलब सभी लोग जानते हैं। परन्तु यदि उनका अर्थ पूछा जाय तो बहुत थोड़े लोग बता सकते है। ऐसे ही शब्दोमेसे एक

वे अपना कर्तव्य समझते है। फल यह होता है कि वर्षों शिक्षा प्राप्त करने पर भी अपने पैरो खड़े होनेका पाठ विद्यार्थी-गण बिलकुल नहीं सीख पाते। पुस्तक और मास्टर इन दोनोका सहारा पाये बिना उनकी दशा लूलेकी नाई रहती है। परतु जीवन-क्षेत्रमे न तो पुस्तके काम दे सकती है और न मास्टर ही। वहाँ तो अपने द्वारा ही सब काम हो सकता है। योग्य शिक्षा-विधिके बिना मनुष्यका जीवन कितना दुःख-पूर्ण हो जाता है, यह बात पुस्तक परसे समझनेकी आवश्यकता नहीं है। जब शिक्षा ही बेढगी है तब विवेकका क्या पूछना।

यदि यह मान भी लिया जाय कि किसी मनुष्यने भली भाँति शिक्षा भी प्राप्त कर ली है अर्थात् वह सिद्धान्तोको स्थिर करना और उनका उपयोग करना भली भाँति जानता है तो भी उस मनुष्यके विवेक प्राप्त करनेके मार्गमें और भी कई बड़ी बड़ी रुकावटे आती रहती हैं। देखो, जीवनकी भिन्न भिन्न घटनाओ पर अपने और दूसरोंके अनुभवका सच्चा उपयोग करनेके लिए चित्तका निष्पक्ष रहना आवश्यक है। बिना निष्पक्ष हुए अपनी आवश्यकतायें और उनको पूरा करनेके सच्चे साधन साफ साफ नहीं दीख सकते। देखा जाता है कि पक्षपातका प्रबल झकोरा बड़े बड़े बुद्धिमानोके चित्तको भी डुला देता है। सरासर झूठको सच और सचको झूठ बना कर दिखा देना पक्षपातका ही कार्य है। क्रोध, लोभ, स्वार्थ आदि नीची श्रेणीके मानसिक विकारोंको जाने दो, पक्षपातने अपना स्थान जात्यभिमान सरीखी उच्च वृत्तियोंमे भी बना रक्खा है। लोग समझते है कि जाति और धर्मका प्रेम बड़ा गुण है। इनसे मनुष्यको कुछ हानि भी हो सकती है, यह बात कोई विचारमे नहीं ला सकता।

अनुभव द्वारा निर्णय की हुई बातोका भाव अधिक स्पष्ट होता है; परंतु मनुष्य-जातिके भूतकालके अनुभवसे कुछ भी लाभ न उठा कर प्रत्येक विषयके स्वतः अनुसधान करनेको कोई विचारशील मनुष्य स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा करनेसे सभ्यताका विकाश होना असंभव हो जायगा। इस लिए जब हम विवेकका अर्थ ' भूतकालके अनुभवका वर्तमानमें उपयोग करना ' बतलाते है तब हमारा अभिप्राय केवल व्यक्तिगत अनुभवसे ही नहीं है; किंतु शिक्षा द्वारा मनुष्य-जातिके अनुभवसे भी परिचित होकर आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करनेसे है।

स्मरण रहे कि ज्ञान प्राप्त कर लेना एक बात है, और उसको प्राप्त करनेकी रीतिका जान लेना और आवश्यकता पड़ने पर उसके उपयोग करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेना दूसरी बात है। ज्ञान-समुद्र अथाह है। कोई शिक्षक, चाहे वह कितना ही चतुर क्यो न हो, अपने विद्यार्थियोको सब आवश्यक बातें नही बता सकता। निदान मनुष्यको अधिकाश बातें स्वतः सीखना पड़ती है। अपनी ऑखोके सामने होनेवाले प्रतिदिनके कार्योंको देख कर उन परसे सिद्धान्तोको स्थिर करनेकी आदत उपयुक्त शिक्षाके बिना नही पड़ सकती। जड़ विज्ञानकी स्थिर परीक्षाओ परसे सिद्धान्तोको कायम करनेका कार्य सरल है; परन्तु व्यवहार-क्षेत्रके कार्य बड़े नाज़ुक रहते है, अत एव उनके भेदको समझना बड़े बड़े अनुभवी व्यक्तियोसे भी नहीं बन पड़ता। सरलसे कठिनकी ओर जाना प्राकृतिक नियम है। इस लिए बालकोको पाठशालाओमे विज्ञानकी परीक्षाओं परसे सिद्धान्तोको स्थिर करनेका अभ्यास करवाना चाहिए। परंतु शिक्षक लोग इससे उलटा ही काम करते है। विद्यार्थियोको बता देना यही

गया है कि अनेक मनुष्य वासनाओंके दु.खमय परिणामोको भली भाँति जानते हुए भी उनकी तीव्रताको न सह सकनेके कारण लाचार होकर उनके वश हो जाते हैं। पाप करके पश्चात्ताप करना इसीको कहते है। ऐसे लोग उन मूर्खोंसे भले है जो कार्यके परिणामोका विचार तक नहीं करते। सवेरेका भूला यदि शाम तक घर आ जाय तो उसे भूला न कहना चाहिए। परतु कठिनाई तो यह है कि दुर्व्यसनोमे फँस कर विरले ही भाग्यवान उनसे छुटकारा पाते हैं। इस लिए इस विपयमे अनुभव-जन्य ज्ञानसे लाभ उठा सकनेकी आगा कर लोगोको उसकी प्राप्तिका उपदेश देना ठीक नहीं है। व्यसन उस दलदलके समान हैं जिसमे मनुष्यने एक वार पैर रक्खा कि फिर प्रयत्न करने पर भी वह नीचेहीकी ओर जाता रहता है। इसी लिए इन्द्रियोकी लम्पटताको बुद्धिपूर्वक सह लेनेका नाम ही तप है। यदि सच पूछा जाय तो भूतकालके अनुभव द्वारा चित्तको स्थिर करके उसे कुमार्गमे जानेसे रोक देना यही तपका मूल सिद्धान्त है।

विवेक, जैसा कि हम ऊपर वतला चुके है, चित्तको इन्द्रियोंकी पराधीनतासे रोकनेका साधन है। वह आलस्यसे विलकुल भिन्न और डरपोंक पनसे उलटा है। भले कामोसे जी चुरानेका नाम यदि आलस्य है तो बुरे कार्योंसे चित्तको रोकनेका नाम विवेक है। इच्छाओंकी तप्त अग्निको वीरता-पूर्वक सह लेनेसे विवेककी क्रान्ति बढती है। इसी विवेकके न होनेसे मनुष्यको अपना धन, स्वास्थ्य और मानसिक शाति सभीसे हाथ धो बैठना पडता है। बहुतसे सामाजिक अनिष्टोका भी कारण अविवेक है। इस कारण व्यक्ति मात्रका कर्तव्य है कि प्रत्येक कार्यको करनेके पहले उसके परिणामोंकी ओर विचार करनेमे वह अपनी विवेक-बुद्धिसे काम ले।

परंतु स्मरण रहे कि मात्रासे अधिक होने पर ये गुण भी हानिकारक हो जाते है और मनुष्य इनके मदसे मतवाला होकर बड़े बड़े अनर्थ कर बैठता है। इतिहासको पढते समय अन्य धर्म और जातियोके सम्बधसे हमें भूतकालमे क्या क्या लाभ अथवा हानियॉ हुई है इसका अन्वेपण करते समय उपर्युक्त भावोकी करामत नजर आती है। अपना रहन-सहन, अपनी रीतियॉ और अपने जातीय रिवाज अन्य जातियोके रहन-सहन इत्यादिके मुकाबलेमे नीचे ठहरते देख कर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमे ये भाव उत्तेजित हो उठते है; और फिर वह जान-बूझ कर सत्य-निर्णय माननेके लिए तैयार नही होता। ॲगरेजोंके कई रिवाज हिन्दुओकी रीतियोसे अच्छे है, यह बात माननेके लिए कितने मनुष्य तैयार हैं! इसी भॉति समाजके नियम रिवाज और रूढियोके नियममे भी मनुष्यको प्रबल पक्षपात होता है। जातियोमे जो पारस्परिक ईर्षा और घृणा हुआ करती है उसका मूल कारण यही पक्षपात है। इसका अधिकार भी इतना विस्तीर्ण है कि जन-साधारणसे लेकर बड़े बड़े विद्वान और महात्मा भी इसके वशमे है। साधारण मनुष्यके चित्तको विचलित करनेवाले भावोकी गिनती करना तो कठिन ही है। इन भावोमे और विवेकमे वडी शत्रुता है।

पक्षपातके सिवाय वहुतसे स्थलो पर इन्द्रियोकी लम्पटताके कारण मनुष्य अपने भूतकालके अनुभवका उपयोग नहीं कर सकते। वासनाओके लोलुपको देखो, मनुष्य जुआ, चोरी, शराबखोरी आदि दुर्व्यसनोके दु:खमय फलोंको चख कर भी उनसे बाज नही आता। इन्द्रियोकी लम्पटताको सफलता-पूर्वक रोकनेके लिए ज्ञानके साथ ही साथ मनुष्यको दृढ-प्रतिज्ञ होनेकी भारी आवश्यकता है। क्षणिक सुखके आवेगमें मन न जाने पावे यही दृढ-प्रतिज्ञाका मतलब है। बहुधा देखा

मनुष्य जब अपने जीवनकी ओर ध्यान देता है तो उसे जान पडता है कि अपने भोगे हुए सुख और दुःखका ठीक ठीक परिणाम बता देना कठिन है। परंतु इतना तो अवश्य है कि जीवनमें सुख और दुःख दोनोका अधिकार है। लाखों व्यक्तियोमे ऐसा एक भी न मिलेगा जो यह कह सके कि दुःख किसे कहते है। यह उसे माऌम ही नहीं है। गरीव, धनवान, राजा, यहाँ तक कि चक्रवर्तीको भी दुःखका घूँट कभी न कभी अवश्य चखना पड़ता है। इसी लिए विद्वानोका कथन है कि मनुष्यको सुख और दुःख दोनोंको सहन कर सकनेका अभ्यास डालना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान स्वतः अपने आदर्श जीवनको भी दुःखसे मुक्त न वना सके तो वतलाइए साधारण मनुष्यको दुःखसे पूरा छुटकारा पा जानेकी आशा करना निरी व्यर्थ नहीं है ?

संसारके सभी प्राणी यदि किसी वातमे एक स्वरसे सहमत हैं तो वह केवल दुःखसे छुटकारा पानेकी चेष्टा करना ही है। क्या बूढे, क्या बालक, क्या मनुष्य, क्या पशु-पक्षी आदि सभी दुःखके नामसे घृणा करते हैं और ऐसा प्रयत्न करने पर भी कोई मनुष्य आपत्तिके चंगुलमे फॅसे विना नहीं वच सकता। मनुष्य-जातिके लिए दुःखोसे छुटकारा पानेका प्रश्न वहुत पुराना है। लाखो वर्प पहलेके लोग भी इसके लिए इतने ही चिन्तित थे जितने कि आज हम है। लोग दु.खसे छुटकारा पानेका यत्न भले ही करें; परतु दु'खका नाम लेते ही अधीर हो जाना और आपत्तिके आने पर कर्तव्य विमूढ होकर कभी दूसरे लोगोंसे, कभी अपने आपसे और कभी परमात्मासे कुपित हो सताप करना इत्यादि ऐसी बाते हैं जिन पर विचार करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। दुःख निरा घृणास्पद ही है अथवा उसमे कई

जीवनके दुःख ।

'संसार सुखी है अथवा दुखी ' इस प्रश्नकी मीमासा प्रायः लोग प्रति दिन किया करते है। प्रत्येक जन वहुधा अपनी स्थिति और अनुभवके अनुसार ही इसे हल करते है। जिस मनुष्यको अपनी आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए सब प्रकारकी सामग्री पर्याप्त है और जिसने कभी आपत्तिका अनुभव नही किया वह सारे संसारको अपने ही समान सुखी समझता है। इसके विपरीत दुखी और चिन्तातुर मनुष्यको सारा संसार दुःखमय प्रतीत होता है। यदि सच पूछा जाय तो प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह कितना ही विद्वान और निष्पक्ष क्यो न हो, चाहे वह अपने सिद्धान्तोको स्थिर करनेमें कितनी ही बारीकीसे क्यो न काम ले, इस विपयमे अपने अनुभव और अपनी कल्पनाओको कभी दूर नहीं कर सकता। उसे अपनी स्थितिके अनुसार ही सारा संसार दीखेगा।

इस प्रश्नका वास्तविक उत्तर प्राप्त कर लेना यदि असम्भव नहीं तो कमसे कम असाध्य तो अवश्य है। यह नही समझना चाहिए कि गम्भीरता-पूर्वक किसीने आज तक इसके हल करनेका प्रयत्न ही नहीं किया। दार्शनिक विद्वानोने अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार इस प्रश्नकी खूब उथल-पुथल की है। वास्तवमे ससारके सभी धर्मोंकी एक मात्र जड़ यही प्रश्न है। अपने व्यक्ति गत सुधारके लिए इस प्रश्नको हल करनेकी आवश्यकता है अथवा नही, यह ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता। किन्तु इतना तो निस्सदेह है कि अपनी चरित्रोन्नतिके लिए इस महत् प्रश्नके जजालमे फॅसनेकी सलाह देना ठीक नहीं है।

लिए वाछनीय है कि प्राणी दु.खसे डरते है। वास्तवमें मानव-जीवनसे दु.खका नि शेप हो जाना मनुष्यके लिए कल्याणकारी नहीं है।

सच पूछो तो मनुप्य दु'खसे केवल उसी समय तक डरता है जब तक वह आकर उपस्थित नहीं होता। धैर्यवान हो अथवा कायर, दुःखके उपस्थित होने पर उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न दोनों ही करते है। कोई विरला ही ऐसा होगा जो आपत्तिके आने पर निश्चेष्ट होकर बैठ जाय। उपाय सफल हो अथवा न हो, यह और बात है। वास्तविक शत्रुसे न डर कर केवल मात्र उसके नामको सुन कर काँपना सचमुच हास्य-जनक है। परतु दुःखके सम्बंधमे अधिकांश मनुष्योंकी चेष्टा ऐसी ही होती है।

आपत्तिके परिणामोंकी ओर दृष्टि डालनेसे जान पडेगा कि वह कई अंशोमें मनुष्यका शिक्षक और उसकी उन्नतिके लिए आवश्यक है। शूरता और धैर्यकी सच्ची शिक्षा तो आपत्कालमे ही प्राप्त हो सकती है। जिस मनुष्यने बालकपनहीसे आपत्ति उठाई हो, उसका अनुभव बहुत विस्तीर्ण हो जाता है। इसके विरुद्ध जन्मसे ही लाड़-प्यार और सुखमे पला हुआ मनुष्य कायर हो जाता है। दु खका नाम सुनते ही उसका चित्त व्यथित हो जाता है। इतिहासमें सैकड़ों दृष्टात ऐसे मिलेगे जिनमे कि आपत्ति उठानेवाले मनुष्योंने अपने अनुभवके सहारे बहुत कुछ कर दिखाया है। जो आपत्तिमें एक बार फँस चुका है उसे मनुष्योंकी परख, पैसेकी कीमत, उद्योगका ढग और साहसका महत्त्व ये सब बाते अच्छी तरह विदित हो जाती है। कविने कहा भी है 'बिपति बराबर सुख नहीं, थोड़े दिनकी होय।'

मित्र और कुटुम्बियोंकी सच्ची परीक्षा करनेका समय कौनसा है? यही आपत्ति-काल। सुख और समृद्धिके रहते जिन मनुष्योने तुम्हारा

अश भले भी मौजूद है, उसने मनुष्य-जातिका अहित साधन करनेके सिवाय उसकी कुछ भलाई भी की है अथवा नहीं और उसके प्राप्त हो जाने पर धैर्य छोड़ देना ठीक है अथवा नहीं इत्यादि प्रश्नों पर विचार करना इस पाठका आशय है ।

कुछ समयके लिए मान लो कि ससारसे दुःखका परिवार बिल्कुल उठ गया है । सभी मनुष्य चिन्तासे रहित होकर स्वच्छदता-पूर्वक अपने दिन व्यतीत कर रहे है । अहा, क्या ही अच्छा समय है ! परंतु जरा सोचिए तो सही कि उस समय दया, भ्रातृ-भाव, करुणा, दान, आदि सत्कृत्य भी क्या संसारमे रह सकेगे ? जब कोई रोगी नहीं तब इलाज किसका होगा ? दरिद्र और निर्धनोके विना परोपकारके लिए दानका क्या अर्थ होगा ? जब किसीके ऊपर आपत्ति ही नही तो भ्रातृ-भाव और करुणाका क्या प्रयोजन होगा ? खैर, दया, करुणा और परोपकार न हो तो कोई चिन्ता नहीं, जब इनका प्रयोजन नहीं है तब इनके रहनेकी आवश्यकता भी नहीं; परन्तु देखना चाहिए कि ऐसी अवस्थामें जीवन क्या वाछनीय रहेगा ?

आलसी और निरुद्यमी लोग, जिनको कामके नामसे घृणा है और ऐसे पुरुष, जिनको कर्तव्यके गौरवकी खबर नही है, आलस्य-पूर्ण जीवनको अवश्य ही सुखदाई समझेगे । परंतु यदि ऐसे मनुष्योको चार छह दिन बिछौने परसे न उठने दिया जाय तब उन्हे मालूम हो जायगा कि कर्तव्यमे कितना आनन्द है । संसार दुःख-शून्य होकर वास्तवमे संसार ही रहेगा ऐसी सहसा प्रतीति नही हो सकती । वह दिन आना भी असभव है । सच पूछो तो आपत्ति जीवनको और सुखको सुस्वादु बनानेके लिए नमकके समान है । सुख भी तो इसी

भाँति इस शिक्षाको अर्थात् परमात्माके स्मरणको भी विपत्ति टलने पर वह भुला देता है । कितना अच्छा हो, यदि कोई मनुष्य विपत्तिके समय पर होनेवाले सब भावोको डायरीमे लिख कर रख छोड़े । ऐसा करने पर इन बातोंके भूल जानेकी आशका कुछ कम हो जायगी ।

आपत्तिके समय जो लोग परमात्माका नाम रट रट कर दुःखसे छूटना चाहते है वे वास्तवमें मूर्ख हैं । ऐसी इच्छा रखना मानो परमेश्वरको लॉच देनेके समान है । जन्म भर परमात्मा, परलोक, धर्म, अधर्म, पुण्य और पापके नाम पर हँस हँस कर ताली देनेवाला मनुष्य दुःखके समय भगवान्‌को भज कर दुःखसे पार होना चाहता है और जब उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं होता तब परमेश्वरको झूठा कहने लगता है । परतु वास्तवमें उसे सोचना चाहिए कि अपने कृत्योको सुधारे बिना मनुष्योंकी रक्षा किसी प्रकारसे नहीं हो सकती । अपने कर्तव्यका ज्ञान ही दुःखके डकको उतारनेवाला मंत्र है । विपत्तिके समय दूसरोंसे सहायता और आश्वासन पाकर मनुष्यके हृदयमें सहानुभूतिका अकुर जम कर धीरे धीरे बढता जाता है । उसे विदित हो जाता है कि परस्पर सहानुभूतिके द्वारा मनुष्य अपने साथियोंका दुःख कितना कम कर सकता है । निदान दूसरोको विपत्तिमें देख कर ऐसे मनुष्यका हृदय प्रेमसे उमड़ उठता है, धीरे धीरे उसकी सहानुभूतिका क्षेत्र बढता जाता है और उसमें छोटे छोटे कीड़ो तकको स्थान मिल जाता है ।

आपत्ति-कालकी सब शिक्षाओंको गिना देना असंभव है । परतु केवल मात्र उपर्युक्त शिक्षाओं पर विचार करनेसे लोगोको विश्वास हो जायगा कि आपत्ति केवल भयानक चीज ही नहीं है । जो लोग उससे शिक्षा प्राप्त करना चाहें उन्हे वह बहुत कुछ सिखा सकती है । यदि

हजारो रुपया खाया है, उनकी परीक्षाके योग्य समयका प्राप्त हो जाना अनिष्ट कैसे ? तुम्हारी धोखेकी टट्टीको हटा देनेवाला और सम्पत्तिके अंधकारको नष्ट करनेवाला आपत्काल मित्रके समान क्यो न समझा जाय ?

जिस प्रकार आपत्तिके प्राप्त होने पर मित्र, भृत्य या अन्यान्य व्यक्तियोंकी सच्ची परीक्षा हो जाती है उसी प्रकार अपनी परीक्षा करनेका सबसे उत्तम स्थल भी यही है। तुमने जितनी नैतिक उन्नति की है, जितने बल और साहसको प्राप्त किया है, वह वास्तवमे भरोसेके लायक है अथवा नहीं, यह बात बिना आपत्ति प्राप्त हुए नही जानी जा सकती। धन, पैसा और सामग्री होते हुए दूसरेके द्रव्यकी इच्छा कोई नहीं करता; परंतु जब मनुष्य पैसे पैसेके मुँहताज हो उस समय उसकी नीयत ठीक है या नहीं, इसका सच्चा पता लग जाता है। क्रोधको काबूमें रखनेकी सच्ची परीक्षा उस समय है जब कि शत्रु मनमानी गालियाँ बक रहा है। इसी भाँति काम, अहंकार, इर्षा और स्वार्थ इन सब मनोविकारोकी परीक्षाके स्थान भिन्न भिन्न है। निदान आपत्तिके समय मनुष्यकी सारी वृत्तियॉ बहुत ही उत्तेजित हो उठती है। उस समय उन्हे तुम सँभाल सकते अथवा नही, यह बात बिना दुःख उठाये कैसे जानी जायगी।

विपत्तिकी एक और उत्तम शिक्षा यह है कि मनुष्यको उस समय परमेश्वरकी खबर अनायास ही आ जाती है। ऐसे मनुष्य, जिन्होने कि अपने जीवन भरमे एक बार भी ईश्वरका नाम स्मरण नहीं किया है, विपत्तिमे फॅसने पर एक बार आप-ही-आप भगवान् भगवान् कह उठते है। परन्तु दुःखका विपय है कि जिस प्रकार आपत्ति-कालकी सारी शिक्षाओको मनुष्य अच्छे दिन आने पर भूल जाता है उसी

यदि शिक्षितोकी सुसभ्य भूलोका अन्त यहीं तक होता तो भी अधिक अमगलकी सभावना न थी। परन्तु मामला इससे भी भयानक है। सब लोग जानते है कि स्वार्थ और पक्षपात ये मनुष्योकी उन्नतिके दो बड़े प्रबल वैरी है। समाजकी उन्नतिके लिए जिस समुद्योगकी आवश्यकता होती है, वही सम्मिलित उद्योग स्वार्थ और पक्षपातके कारण होने नही पाता। आपसी मेलके बदले आपसी अनबन और झगड़ा होता है। फल यह होता है कि सामाजिक जीवन दिनों दिन दुर्वल होता जाता है। ठीक ऐसे समयमे तमाशगीरोकी खूब बनती है। एक दूसरेको लड़ा कर वे तमाशा देखते है। साथ-ही-साथ उन्हे यह कहनेका अवसर मिल जाता है कि ऐसी अवस्थामे उन्नति होना असंभव है। ‘ बिल्लियोंकी लडाई और वदरका न्याय ’ वाली कहावत, सच पूछो तो लोगोके सामने प्रति दिन चरितार्थ हो रही है।

जो लोग अशिक्षित है, जिन्हें अपने बालकपनसे ही गाय-भैस और खेतीकी वातोके अतिरिक्त और कुछ जाननेका सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ है उन लोगोंके मत्थे झगडेके दोपको मढ देना अनुचित है। उन बेचारोको दिन भर परिश्रम करके अपने पसीने द्वारा साहूकारके लिए वीज और सरकारके लिए किस्त पटानेके सिवाय और तीसरी वातके लिए समय ही कहाँ है। पेट भर खाना और अग ढाकनेके लिए गजीका कपड़ा पा लेना, वस यही उनके लिए उन्नति और सुखकी चरम सीमा है। ऐसे लोगोंके सिर पर अवनतिकी जिम्मेदारीका वोझ रखना अन्याय है।

जिन मनुष्योंमें वस्तुके गुण-दोषोंकी आलोचना करनेकी शक्ति है, जो स्वार्थके भयानक परिणामोंको दिन-रात पढते और अपनी आँखोंके सामने देखते है, जो अपने तई समाजकी नैयाके खेवटिया समझ रहे

कोई साधन आवश्यक है तो वह केवल धैर्य है। धीरजको धारण करके मनुष्य आपत्ति द्वारा उपर्युक्त अमूल्य और लाभकारी वस्तुओको सरलतासे प्राप्त कर सकता है ।

साम्प्रदायिक कलह ।

लोग कहते है कि शिक्षाके साथ मनुष्यका हृदय विस्तीर्ण होता जाता है, छोटी छोटी निरर्थक बातोमे उसका जी नहीं उलझता है और उसमें सहानभूतिकी मात्रा बढ जाती है। यथार्थमे ऐसा होना भी चाहिए। क्योकि शिक्षा प्राप्त करनेका अर्थ केवल विश्वविद्यालयकी उपाधियॉ ले लेना ही नहीं है, वरन हृदय, मन और शरीरकी सभी उत्तम शक्तियोको बढाना है। पुराने समयकी 'चार बैल भर विद्या' की कहानी पाठकोने सुनी होगी। यदि सच पूछा जाय तो व्यावहारिक अनुभवमे शून्य होनेके कारण ही हमारे शिक्षित लोगोकी उन विद्या-बैलोसे भी बुरी दशा है। जो बाते साधारण बुद्धिमे भी निकृष्ट जॅचती है वे ही शिक्षित मनुष्योको न मालूम क्यो रुचने लगती है। उदाहरणके लिए नौकरीकी बात लीजिए। गलीका गॅवार भी 'निकृष्ट चाकरी भीख निदान' की कहावतको जानता है। परंतु शिक्षित लोगकी एक मात्र जीविका तो सेवा-वृत्ति ही हो रही है। इसी भॉति शिक्षित लोग अशिक्षितो और पुराने विचारवाले मनुष्योकी अंधश्रद्धा और भेडियाधसानकी खूब निन्दा करते है; परन्तु आप स्वतः ऑखे मींच कर दूसरोके विचार, वेश और प्रथाओका कैसा अध अनुकरण करते है इस बातकी ओर उनका ध्यान ही नही जाता।

होता है कि विचारोकी जैसी स्वतन्त्रता और परस्परकी जैसी सहानुभूति पुराने समयमे मौजूद थी उसका शताश भी आज दिखाई नहीं पड़ता। सम्प्रदाय और धर्म तो परलोक, परमात्मा, नैतिक चरित्र आदि कई प्रश्नो पर भिन्न भिन्न प्रकारकी विचार-शैलियॉ है। इनके कारण आपसी विद्वेष होनेकी आवश्यकता ही क्या है? धर्म और सम्प्रदाय, चाहे वह किसी प्रकारका क्यो न हो, आपसी द्वेपको कभी ठीक नही कह सकता। यदि वास्तवमे उसमे कलह और झगड़ेका उपदेश दिया है तो वह धर्म नही है, वह तो समाजके भिन्न भिन्न अगोमे अशाति फैलानेके कारण दंडका पात्र है। यह हो सकता है कि एक सम्प्रदायने दूसरे सम्प्रदायकी विचारशैलीके दोप बता कर उनका खंडन भले ही किया हो; परंतु इसका मतलब ईर्षा नहीं है, यह तो उलटी मित्रताकी सलाह है। परंतु दुःखका विपय है कि शाति और सहानुभूतिके साधनोका लोग स्वार्थ-वश इस प्रकार दुरुपयोग कर रहे हैं। धर्मके उपदेशक लोग भी जब स्वार्थ-वश साम्प्रदायिक झगड़ोकी पुष्टि करके लोगोको उत्तेजित करते हैं तब यदि वेचारे अशिक्षित लोग आपसमे झगड़ने लगे तो क्या आश्चर्य है! शिक्षित लोग कौमी झगडोके हिमायती इस लिए बनते है कि उनकी समझमे जातिका पक्षपात करना न्याय-पूर्ण है, और वे समझते है कि ऐसा करनेसे उनकी जातिकी उन्नति होगी; परतु यह उनकी गलती है। समाजके वास्तविक स्वरूपको यदि ये लोग समझ ले तो इस प्रकारके साम्प्रदायिक झगड़ोको वे कभी खड़े न होने दे।

समाजकी तुलना हम शरीरके साथ करेगे। यदि समाज शरीर है तो भिन्न भिन्न सम्प्रदाय और जातियॉ उसके हाथ, पॉव, नाक, मुँह आदिकी नाई भिन्न भिन्न अग है। यदि कोई चाहे कि पॉवमे दर्द

है, यथार्थमे हमारी दुर्दशाका सारा पाप उन्हींके सिर है। कानूनकी दृष्टिमे अज्ञानी मनुष्य दयाका पात्र भले ही न ठहरे; परतु मन साफ गवाही देता है कि बेचारा अज्ञानी मनुष्य अवश्य दयाका पात्र है। इसके विरुद्ध जो व्यक्ति जान-बूझ कर पाप कर रहा है ऐसा ज्ञान-पापी साधारण अपराधीकी अपेक्षा सौगुना दंड-पात्र है। इसी कारण अशिक्षित समुदायको दोपी न मान कर उन्नतिके नेताओकी ऑखे खोलना ही वास्तवमे लाभकारी होगा।

सब लोगोको साम्प्रदायिक झगड़ोके बुरे परिणामोका थोड़ा बहुत अनुभव अवश्य होगा। अशाति और विद्वेपका सच्चा कारण यही आपसी लडाई है। दिवानी और फौजदारी अदालतोमे जितने मामले हर साल हुआ करते है, उनमेसे अधिकाश अपराधोकी जड़ यही साम्प्रदायिक विद्वेप है। मै हिन्दू, मै मुसलमान, मै ईसाई, मै खत्री, मै वैष्णव, मै शैव, जिधर देखो उसी ओर बस यही मै, मै, सुनाई पड़ती है। यदि इस अहङ्कारके वशीभूत होकर लोग अपनी अपनी उन्नतिमे दत्त-चित्त होते तो सौभाग्यकी बात थी। परतु अपनी भलाई करनेके बदले दूसरोको नीचा दिखाना यही इनका उद्देश्य हो रहा है। ठीक है, स्वयं ऊँचे होनेके बदले दूसरोके पैर काट कर उन्हे नीचा दिखा आपको उनसे ऊँचा दिखा देनेकी यह युक्ति भी लोगोको अच्छी सूझी है।

नाना प्रकारके धर्म और सम्प्रदायोकी सृष्टि कौनसी बात बताती है? क्या उससे आजकलकी नाई हृदयकी क्षुद्रता और आपसी ईर्पाका अनुमान होता है? यदि विचारोकी पृथक्ताके कारण पूँछ उठा उठा कर लडनेकी आदत पुराने जमानेमे होती तो सम्प्रदायोका इस तरह बढना सभव था? इन सब प्रश्नो पर विचार करनेसे विदित

प्रगट होते है। इस अवस्थासे उन्नति करते करते मनुष्यकी दूर-दर्शिता सभ्यताके विकाशके साथ साथ क्रमशः बढ़ती आई है। देखते है कि सभ्य जातियोके लोग वर्षों बाद होनेवाली घटनाओका अन्दाज भी बहुत कुछ लगा सकते है और जो मनुष्य जितना दूर-दर्शी है, वह उतना ही बुद्धिमान् समझा जाता है।

सुसभ्य जातियोकी दूरदर्शिताका परिणाम जाननेके लिए विज्ञान और कलाओकी ओर दृष्टि डालिए। अपनी भविष्य सन्तानकी भलाई और आरामके लिए, उनकी ज्ञान-सम्पत्तिको बढानेकी गरजसे वैज्ञानिक लोग अपनी परीक्षाओको तथा नवीन शोधोंको पुस्तकाकार संग्रह करते है। इसी भाँति दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता लोग अपने अपने विचारोंको संग्रह-रूपमे रखनेका प्रयत्न केवल दूर-दर्शिताके कारण करते है। यदि इन्हे केवल अपने ही भरण-पोषण और आरामका खयाल होता तो इतना प्रयास करनेकी आवश्यकता ही क्या थी। संसारके सभी परोपकारी और उन्नतिके मार्गमे प्रयत्न करनेवाले सज्जन जन-साधारणकी अपेक्षा बहुत दूरदर्शी है। जन-साधारणको अपने जीवन और अधिक हुआ तो अपने बाल-बच्चेकी जिन्दगीकी ही चिन्ता रहती है। वे आजसे बहुत हुआ तो केवल पचास साल आगे देखते हैं, परन्तु सभ्यताकी उन्नतिमे विशेष रूपसे सहायता देनेवाले आविष्कारक वैज्ञानिक और तत्त्ववेत्ता भविष्यके अनन्त सागरमे कमसे कम शताब्दियो आगे देखते है।

दुःखका विषय है कि पराये आराम और सुखके लिए इतने प्रयास करनेवाले मनुष्य अपने भविष्यके विषयमे जरा भी दूरदर्शी बननेका प्रयत्न नहीं करते। धन, सम्पतिको जोड़ना, बडे रिश्तेदारोसे नाता जोडना, स्थावर सम्पत्तिको एकत्र करना, बड़े बड़े मकान बनाना

बना रहे और शरीर स्वस्थ रहा आवे तो यह संभव नही । यदि कोई अंग प्रमाणसे अधिक मोटा हो जाय तो शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है । निदान सब अग-उपागोका योग्य प्रमाणमे बढना ही इष्ट है । इसी प्रकार यदि समाजके भिन्न भिन्न अग अर्थात् जातियॉ और जो समुदाय एक दूसरेसे बिना झगडे शाति-पूर्वक अपनी अपनी उन्नति करते जायॅ तो समाजका कल्याण हो सकता है, अन्यथा कभी नहीं । अत एव दूसरोकी उन्नतिसे ईर्षा करके उनके अधिकारोको संकुचित कर अपने हाथ पैर बढाना समाजके लिए बड़ा हानिकर है । जो शिक्षित लोग दूसरोको नुकसान पहुँचाते हुए भी अपनी अपनी जातिका पक्षपात करना योग्य समझते हैं वे वास्तवमे भूल कर रहे है। ऐसी प्रतिद्वंद्वतासे सभीका अमङ्गल है। सामाजिक उन्नतिकी इच्छा रखनेवालोको सहानुभूतिका मत्र सीखनेकी सबसे भारी आवश्यकता है।

अनन्त प्रकाश ।

मनुष्यकी बुद्धिका पता उसकी दूर-दर्शितासे लगता है। अज्ञानी और मूर्ख लोगोके नेत्र सदैव वर्तमान ही पर लगे रहते है। किसी कामका परिणाम क्या होगा, इसकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता । जंगली असभ्य जातियोंकी आदतोंको देखनेसे यह बात ठीक समझमें आ जाती है । यदि उनके पास आज खानेके लिए अन्न है, तो वे आज मजदूरी कदापि न करेगे। जब जीवनकी इन प्राथमिक आवश्यकताओके विषयमे ही वे लोग कलकी बात नही सोचते तो फिर उन कार्योंकी बात ही क्या है, जिनके परिणाम महीनो अथवा वर्षों बाद

'मृत्युके परे क्या है' इस प्रश्नकी ओर एक तो मनुष्यका ध्यान जाता ही नहीं और यदि कभी स्मशानमे शव-संस्कारके लिए जाने पर उस ओर चित्त चला भी जाय तो स्मशानसे बाहर होते ही वह फिर वहाँसे झट लौट पडता है। प्रश्नके महत्त्वका विचार करके सच्चे दिलसे इस विषयमें अनुसंधान तो लाखो मनुष्योमें केवल दो चार ही करते होंगे। निदान इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त कर लेना तो दुस्तर ही है। जो मनुष्य इस विषयमें विचार करते है उन्हें मानो अपने कर्तव्यसे च्युत करनेके लिए पहले तो मनुष्य-जाति ही जी-जानेसे कोशिश करती है। कोई लोग कहते है कि अमुक मनुष्य पागल है, कोई उसे निखट्टू और आलसी बताता है और कोई दम्भी। यह बात साधारण मनुष्योकी नहीं, बड़े बड़े महात्माओंकी है, जिन्होने इस विषयमे स्वतः प्रयत्न किया है; परंतु जिन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी। यदि मनुष्योंके इन निराशा-पूर्ण और हृदय-वेधी शब्दोसे किसी दृढ-प्रतिज्ञ महात्माने छुटकारा पाया तो अपना ही चित्त इस मार्गमें नाना प्रकारकी बाधाओंको उपस्थित करता है। शका और अविश्वासका सारा झुड इकट्ठा होकर मनुष्यको व्याकुल कर देता है। ऐसे समय यह विदित होता है कि किसी अमूल्य खजाने पर अधिकार प्राप्त करनेके लिए मनुष्य पर उस भंडारके रक्षक रौद्र रूप धारण कर सशस्त्र टूट पडे हों। और सचमुचमे बात भी यही है। मनुष्य जब मृत्युके परे देख सकनेकी शक्तिको प्राप्त करनेको प्रयत्न करता है उस समय उसको बद्ध अवस्थामें रखनेवाली सारी मानसिक वृत्तियाँ घेर कर उसके मार्गमे बाधा डालना चाहती है। धैर्यकी पराकाष्ठाकी परीक्षाका समय वही है।
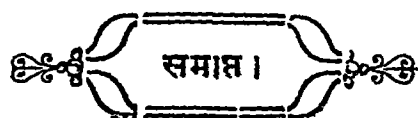
इत्यादि सम्पूर्ण व्यापारोको मनुष्य जितना दूसरोके आरामके लिए करता है उतना अपने लिए नही। सम्भव है कि उसकी एकत्र की हुई जायदादके द्वारा उसकी सात पीढी तक अपनी जिन्दगी आरामसे व्यतीत करे। परंतु उस बेचारेके भाग्यमे तो केवल चिन्ता और दौड़-धूपका बोझ सहना ही बदा था। अधिकसे अधिक इन सब साधनोका उपभोग वह अपने जीवनके अंत समय पर्यंत कर सकता है। जीवनके समयके तो आध घटे बढ़ा सकनेका उसे अधिकार ही नही है। निदान मनुष्यकी सारी यातनाओका फल केवल उसकी जिन्दगीके अन्तिम क्षण तक ही है। उसकी सारी दूरदर्शिता, बुद्धिमानी और प्रयासके उत्तम फलोंका आस्वादन दूसरे भले ही करे, परंतु वह बेचारा मरनेके साथ ही इन सब आनन्दोसे बिलकुल बचित हो जाता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह प्रत्येक मनुष्यका प्रति दिनका अनुभव है। लोग देखते है कि मनुष्यकी सारी लीलाओका अन्त मृत्यु केवल एक क्षणमे कर देती है और उसके ऐहिक प्रयत्नोका फल दूसरे भोगते है। परंतु यह सब प्रति दिन देखते हुए भी मनुष्यकी दृष्टि अपने भविष्यके विषयमे इतनी सकुचित रहती है कि वह अपनी जिन्दगीके परे कुछ देख ही नहीं सकता। दिन-रातके चौबीसो घंटोमे एक निमिष मात्र तकको अपने दीर्घ भविष्य-सम्बधी विचारोमे खर्च करनेकी उसे फुरसत नहीं मिलती। बनझारोके शक्कर लदे हुए बैलोंकी दुर्दशाका हाल सुन कर लोग बडे प्रसन्न होते है; परंतु यदि वे अपनी सच्ची दशाका विचार करे तो उन्हे विदित होगा कि उनकी दशा इन बैलोसे भी खराब है। मनुष्यकी सारी क्रियाओका सार भाग दूसरोके लिए और निस्सार भाग अपने लिए रहता है।

लेकी भाँति निर्बल, पद-दलित प्राणी नहीं रहे जैसे कि तुम अपने आपको समझा करते थे, बल्कि तुम एक कीर्तिशाली, देदीप्यमान सुखी प्राणी हो, तो मैं कहती हूँ कि मेरा नाम ओ हण्णु हारा नहीं।" मूल्य सजि० १।=)

९ **जीवन और श्रम।** परिश्रम करनेसे घबडानेवाले और परिश्रम करनेको बुरा समझनेवाले भारतके लिए यह पुस्तक सजीवनी शक्तिकी दाता है। श्रम कितने महत्त्वकी वस्तु है, यह इसे पढ़नेसे मालूम होगा। मूल्य १॥) रुपया। स०१॥।=)

१० **प्रफुल्ल (नाटक)।** महाकवि गिरिशचन्द्र घोपके वंगला नाटकका हिन्दी अनुवाद। हमारे घरों और समाजमे जो फूट, स्वार्थ, मुकदमेवाजी, ईर्षा द्वेष आदि अनेक दोषोंने घुम कर उन्हें नरक-धाम वना दिया है उनके संशोधनके लिए गिरिश वावूके उत्कृष्ट सामाजिक नाटकोंका घर घरमे प्रचार होना चाहिए। मूल्य १=) सजि० १॥) रु०

११ **लक्ष्मीबाई (झाँसीकी रानी)।** झाँसीकी रानीकी यह जीवनी वड़ी खोजके साथ लिखी गई है। मूल पुस्तकके सम्बन्धमे सरस्वतीके सम्पादकका कहना है कि "केवल इसी पुस्तकके लिए मराठी सीखनी चाहिए।" यह महत्त्व-पूर्ण पुस्तक प्रत्येक स्वाभिमानी भारतवासीको पढनी चाहिए मूल्य १।) रु०, सजिल्दका १॥=)

१२ **पृथ्वीराज (नाटक)।** भारतके सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चोहानने गजनीके दुर्दमनीय मुगल-सम्राटको पराजित कर पुण्यभूमि भारतकी रक्षाके लिए जो अपूर्व आत्म-वलिदान किया था उसी वीरका वीररस-प्रधान चरित्र इसमें चित्रित किया गया है। मू० ॥।) आने

१३ **महात्मा गाँधी।** छः सुन्दर चित्रो-सहित। हिंदी-साहित्यमें यह वहुत वडी और अपूर्व पुस्तक है। इसके पहले खण्डमे महात्माजीकी १३२ पृष्ठोंमे विस्तृत जीवनी है। दूसरे खण्डमे महात्माजीके लगभग ८० महत्त्व-पूर्ण व्याख्यानों और लेखोंका सग्रह है, और उनमें ऐसे व्याख्यान वहुत हैं जिन्हें हिंदी-ससारने वहुत ही कम पढा है। पृष्ठ-सख्या लगभग ४७५। मू० ३) रु०।

१४ **वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति?** नाट्य-सम्राट् महाकवि गिरिशचंद्र घोषके एक श्रेष्ठ सामाजिक नाटकका अनुवाद। भारतीय आदर्शको गिरानेवाले विधवा-विवाहसे होनेवाली दुर्दशाका वड़ा ही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र इसमे खींचा गया है। मू० ॥।=), सजि० १।-)

हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला ।

इस उत्कृष्ट ग्रंथमालाके स्थायी ग्राहकोंको नीचे लिखी इसकी सब पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती है ।

१ सफल-गृहस्थ । अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक सर ऑथर हेल्पसके निबन्धोंका अनुवाद । इसमें मानसिक शान्तिके उपाय, कार्य-कुशलता, कुटुम्ब-शासन, हृदयकी गभीरता, संयम आदि महत्त्व-पूर्ण विषयोंका बड़ा सुंदर विवेचनहै । मू० ।।।)

२ आरोग्य-दिग्दर्शन । मूल-लेखक महात्मा गाँधी । पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिए बड़ी उपयोगी है । पुस्तकमें हवा, पानी, खूराक, जल-चिकित्सा, मिट्टीके उपचार, छूतके रोग, बच्चोंकी सँभाल, सर्प-बिच्छू आदिका काटना, डूबना या जलजाना आदि अनेक विषयों पर विवेचन है । तीसरा संस्करण । मू० ।≡)

३ कांग्रेसके पिता मि० ह्यूम । कॉग्रेसके जन्मदाता, भारतमे राष्ट्रीय भावोंके उत्पादक, मनुष्य-जातिके परम हितैषी, स्वार्थ-त्यागी महात्मा मि० ह्यूमका यह जीवन-चरित्र प्रत्येक देशभक्तके पढ़ने योग्य है । मूल्य ।।।) आने ।

४ जीवनके महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश । जेम्स एलनकी पुस्तकका सरल सुन्दर अनुवाद । प्रत्येक युवकके पढ़ने योग्य चरित्र-सगठनमें बड़ी उपयोगी पुस्तक है । नया संस्करण मू० ।।-)

५ विवेकानन्द (नाटक) । स्वामी विवेकानन्दने अमेरिका जाकर जो हिन्दूधर्मका प्रचार किया, उसकी महत्ताका वहाँके लोगो पर प्रकाश डाला, इस विषयका इसमे सुन्दर चित्र खीचा गया है । देश-भक्तिकी पवित्र भावनाओंसे यह नाटक भरा हुआ है । पॉच चित्र दिये हैं । मू० १) रु०

६ स्वदेशाभिमान । इसमे कितने ही ऐसे विदेशी नर-रत्नोंकी खास खास घटनाओका उल्लेख है, जिन्होने अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर ससारके सामने एक उच्च आदर्श खडा कर दिया है । नया संस्करण । मूल्य ।-)

७ स्वराज्यकी योग्यता । स्वराज्यके विरुद्ध जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं उनका इसमे बडी उत्तमताके साथ खण्डन कर इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि भारतको स्वराज्य मिलना ही चाहिए । मू० १।) रु०

८ एकाग्रता और दिव्यशक्ति । इसमे दिव्यशक्ति—आरोग्य, आनन्द, शक्ति और सफलता—की प्राप्तिके सरल उपाय बतलाये गये हैं । मूल पुस्तककी लेखिका लिखती है कि " इसके अध्ययनसे तुम्हें दिव्यशक्ति अर्थात् आकर्षणकी अद्भुत शक्ति प्राप्त न हो, और तुम्हें यह मालूम न होने लगे कि अब तुम पद-

१५ आत्मविद्या । नये ढंगसे लिखा हुआ वैदान्त विषयका यह अपूर्व ग्रंथ है । इसमे संक्षिप्तमें पर वड़ी सुन्दरताके साथ वैदान्तके महान् ग्रथ योग-वशिष्ठका सार दे दिया गया है । इसका स्वाध्याय और मनन आत्मोन्नतिमें बड़ा साधक है । अनुवाद श्रीयुत प० माधवराव सप्रे वी० ए० ने किया है । मू० सादी जिल्दका २) रु०, कपड़ेकी जि० २॥) रु० ।

१६ सम्राट् अशोक । यह एक उत्कृष्ट और भाव-पूर्ण उपन्यास है । हिन्दीमें ऐसे भाव-पूर्ण उपन्यास बहुत ही कम हैं । इसमे अशोकका विश्वप्रेम, महात्मा मोग्गली-पुत्र तिष्य और श्रेष्ठी उपगुप्तकी परहित-साधनकी समुज्ज्वल भावनाएँ, कुमार वीताशोकका भ्रातृप्रेम, प्रमिलाका कारस्थान और इन्दिरा तथा जितेन्द्रका स्वर्गीय प्रेम आदिकी एकसे एक बढ़कर सुधा-स्यन्दिनी, रसभीनी कहानी पढ कर आप मुग्ध हो जायँगे । मूल्य सादी जि० २॥।) रु० और कपड़ेकी जि० ३।) रु० ।

१७ बलिदान । महाकवि गिरिशचंद्र घोषके एक उत्कृष्ट सामाजिक नाटकका अनुवाद । इसमे वर-विक्रयसे होनेवाली दुर्दशाका चित्र वड़ी कारुणिक भाषामें खींचा गया है, जिसे पढ कर आप रो उठेंगे । देश और जातियोंकी हालतसे आपका हृदय तलमला उठेगा । सारे हिन्दी-साहित्यमे शायद ही इसके जोड़का कोई नाटक हो । मू० सादी जि० १।) रु०, कपड़ेकी जि० १॥।) रु० ।

१८ हिन्दूजातिका स्वातन्त्र्य-प्रेम । हिन्दी-साहित्यमें स्वतत्र लिखी हुई एक उत्कृष्ट पुस्तक । इसमें स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए बलिदान होनेवाली हिन्दू-जातिकी वीरताका ज्वलंत चित्र खीचा गया है, जिसे पढ कर आपका रोम रोम फड़क उठेगा । भाषा वड़ी ओजस्वी है । मू० ॥।≶), सजिल्द १॥) ।

१९ चाँदबीबी—(नाटक) इसमें बीजापुरकी बेगम वीरनारी चॉद-सुलतानाकी अद्भुत वीरता, देशके बालकोंका जन्मभूमिके लिए अपूर्व बलिदान, मराठे वीर रघुजीकी हिला हृदयको देनेवाली स्वामीभक्ति आदिकी वीर और करुण कहानीको पढ कर आपका हृदय भर आयगा, रो उठेगा । मूल्य १।) सजि० १॥।) रु०

२० पंजाबकेसरी रणजीतसिंह—	ये तीनो पुस्तकें दो महीनेमे तैयार होंगी ।
२१ भारतमे दुर्भिक्ष—	
२२ भारतका कल्याण किसमे है—ले० म० गॉधी	

मैनेजर—गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार, कालबादेवी—बम्बई ।